आत्मधर्म
मासिक : वर्ष-१८ * अंक-११ * जुलाई-२०२४

हे जीव ! अब आत्मस्वरूपकी प्राप्ति कर !

यह राग (मोह, अज्ञान) रूपी अग्नि अनादिकालसे निरन्तर संसारी जीवोंको जला रही है–दुःखी कर रही है; इसलिये जीवोंको निश्चयरत्नत्रयमय समतारूपी अमृतका पान करना चाहिये, जिससे राग-द्वेष-मोह (अज्ञान)का नाश हो । विषय-कषायोंका सेवन विपरीत पुरुषार्थ द्वारा अनादिकालसे कर रहा है; अब उसका त्याग करके आत्मपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिये । तू दुःख किसलिये सहन करता है ? तेरा वास्तविक स्वरूप अनन्तदर्शन-ज्ञान-सुख और अनन्तवीर्य है, उसमें लीन होना चाहिये । ऐसा करनेसे ही सच्चा-सुख मोक्ष प्राप्त हो सकता है; इसलिये हे दौलतराम ! हे जीव ! अब आत्मस्वरूपकी प्राप्ति कर ! आत्मस्वरूपको पहिचान ! यह उत्तम अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होता; इसलिये यह अवसर न गँवा । सांसारिक मोहका त्याग करके मोक्षप्राप्तिका उपाय कर !

यहाँ विशेष यह समझना कि – जीव अनादिकालसे मिथ्यात्वरूपी अग्नि तथा राग-द्वेषरूप अपने अपराधसे ही दुःखी हो रहा है; इसलिये अपने यथार्थ पुरुषार्थसे ही सुखी हो सकता है । ऐसा नियम होनेसे जड़कर्मके उदयसे या किसी परके कारणसे दुःखी हो रहा है अथवा परके द्वारा जीवको लाभ-हानि होते हैं – ऐसा मानना उचित नहीं है ।

(छहढाला)

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● परमशुद्ध निश्चयनयसे जीवमें संवर ही नहीं है इसलिये संवरके विकल्प रहित आत्माका शुद्धभावपूर्वक निरन्तर चिंतवन करना चाहिये।४९।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, बारह भावना, गाथा-६५)

● व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म, नोकर्मका सम्बन्ध होता है, उससे रहित, अशुद्ध निश्चयनयकर रागादिका सम्बन्ध है, उससे तथा मतिज्ञानादि विभावगुणके सम्बन्धसे रहित और नर-नारकादि चतुर्गतिरूप विभावपर्यायोंसे रहित, ऐसा जो चिदानंदचिद्रूप एक अखंड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व है, वही सत्य है। उसीको परमार्थरूप समयसार कहना चाहिये। वही सब प्रकार आराधने योग्य है।५०। (श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि. १, गाथा-७)

● सिद्ध भगवानके समान ही निश्चयसे मेरा आत्मा कर्ममलरहित शुद्ध है, शुद्ध स्वभावमें तन्मय है तथा रत्नत्रयस्वरूप है। संसारके भ्रमणसे रहित है, यह आत्मा ही वास्तवमें परमात्मा है, परम वीतराग व निर्दोष है।५१।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-७०६)

● यह आत्मा कर्मके बन्धसे सहित होने पर भी कर्मबंधनसे रहित है, राग-द्वेषसे मलिन होने पर भी निर्मल है और देहधारी होने पर भी देहसे रहित है, इसलिये आचार्य कहते हैं कि आत्माका स्वरूप आश्चर्यकारी है।५२।

(श्री पद्मनंदि पंचविंशति, सद्बोधचंद्रोदय अधिकार, श्लोक-१३)

● सिद्धांतमें कहा है कि "निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः" अर्थात् शुद्ध-पारिणामिक (भाव) निष्क्रिय है। निष्क्रियका क्या अर्थ है ? (शुद्धपारिणामिक भाव) बंधके कारणभूत जो क्रिया-रागादि–परिणति, उस-रूपमें नहीं और मोक्षके कारणभूतमें जो क्रिया शुद्ध भावना परिणति, उस-रूपमें भी नहीं है। इसलिये ऐसा जाननेमें आता है कि शुद्ध पारिणामिकभाव ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं। सो किसलिये? कारण कि ध्यान विनश्वर है। (और शुद्ध पारिणामिकभाव तो अविनाशी है)।५३।

(श्री जयसेनाचार्य, समयसार-टीका, गाथा-३२०)

● यह आत्मा चिदानंदमयी परमात्माके स्वभावके समान है, ऐसी भावना करनेसे कर्मोंका क्षय हो जाता है, जैसे–सिंहको देखते ही हाथियोंके समूह भाग जाते हैं। दृष्टिसे बाहर हो जाते हैं।५४। (श्री तारणस्वामी, उपदेश-शुद्धसार, श्लोक-३०९)

वर्ष-18
अंक-11

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
July
A.D. 2024

श्रावण कृष्ण-१ वीरशासन जयंति

आज दिव्यध्वनिका दिन है। भगवान महावीर परमात्माको केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको हुआ था। ६६ दिन दिव्यध्वनि बंध थी। राजगृहीमें विपुलाचल पर्वत पर आज श्रावण कृष्ण-१ है, सिद्धांतकी श्रावण कृष्ण-१ है प्रथम कृष्ण पक्ष पश्चात् शुक्ल पक्ष। जब विपुलाचल पर्वत पर प्रथम प्रहरमें भगवानकी देशना निकली तब गणधरकी उपस्थिति थी। गौतमस्वामीको ६६ दिन पूर्व क्यों नहीं लाये एक ऐसा प्रश्न आया कि जब भगवानकी दिव्यध्वनि नहीं निकली तब इन्द्र गौतमस्वामीको क्यों नहीं लाये। इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाकर वहाँ गये जहाँ गौतम अपने ५०० शिष्योंको अभ्यास करा रहे थे। पूर्व उनकी काललब्धि नहीं थी, उसका समय नहीं हुआ था। उस समय ऐसा ही था। ६६ दिन हुए तब भगवानकी वाणीको निकलनेका समय था और गौतमस्वामीकी विपुलाचल पर्वत पर उपस्थिति थी। उन भगवानकी वाणीमें भावश्रुत निकले, शास्त्र भावश्रुतज्ञानरूप निकले उनको समझनेवाले गणधर भावश्रुतज्ञानरूप परिणित हुए इसलिये इस वाणीको भी भावश्रुत कहनेमें आया है।

उस वाणीमें प्रथम दिव्यध्वनि आयी तब गणधर हुए वह भी आजका ही दिन है, दिव्यध्वनि निकली वह भी आज, गणधर गौतम पहले हुए वह भी आज और अंतर्मुहूर्तमें बारह अंगकी रचना हुई वह भी आज। भगवानके श्रीमुखसे अर्थरूप शास्त्र निकले उसे सूत्ररूप गणधर गौतमस्वामीने शास्त्रकी रचना अंतर्मुहूर्तमें बारह अंग और चौदह पूर्व क्रमसर की। वहाँ एक समयमें यह सब हुआ वह दिन भी आजका है। उस परंपरा भगवानकी वाणीमें आये शास्त्रों उसमेंसे यह शास्त्र शब्दब्रह्म है। भगवानको जो ओम ध्वनि निकली उसकी रचनाका काल आजका उसमें आया यह शास्त्र है नियमसार...समयसार... भगवानकी वाणीका ही अंश है। (नियमसार प्रवचन-११२, ता. १६-७-१९७३)

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

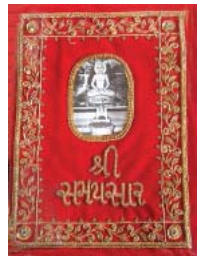

(समयसार गाथा–३२०) (गतांकसे आगे)

ज्ञानी ऐसा जानते है कि जगतके सभी जीव परमात्मस्वरूप है

इसी प्रकार बंध अधिकारमें श्री जयसेनाचार्यदेव कहते है कि अज्ञानका-मिथ्यात्वका-राग-द्वेषका जो बंध है उसके विनाश हेतु विशेष भावना कहते है : स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानंद वह मैं हूँ। दया-दानके विकल्प तो नहीं लेकिन एक समयकी पर्याय वह भी मैं नहीं हूँ। पर्याय तो निर्णय करती है कि यह सहज-शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप वह मैं हूँ। मैं स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप हूँ और तीनकालके तीनलोकके सर्व जीव निर्विकल्प सहज शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप है। तीनलोकमें सभी जीव ऐसे है ऐसी कौन भावना करता है ?–कि जिसे सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें निर्विकल्प शुद्ध वस्तुका अनुभव हुआ है, जिसे अंतर आनंदके स्वादमें द्रव्य-स्वभावका अनुभव हुआ है वह ऐसा जानता है कि सभी जीव ऐसे है, भवी और अभवी सभी जीव ऐसे है। मैं मन-वचन-कायाके व्यापार रहित हूँ। और अन्य सभी जीव भी मन-वचन-कायाके व्यापार रहित है।

मैं अभेद हूँ, निर्विकल्प हूँ ऐसा सम्यग्दृष्टि स्वयंके आत्माको जानता है और उस प्रकार सभी जीवोंको जानता है। निगोदके जीव भी भगवान आत्मा है ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। मन-वचन-कायासे करना, कराना और अनुमोदन करना कि मैं जैसा हूँ वैसे ही सभी जीव पूर्णानंद स्वरूप भगवान है। सम्यग्दृष्टि जीव सभी जीवको इस प्रकार देखते हैं। सूक्ष्म निगोदके जीवका जो द्रव्य है वह शुद्ध चिद्घन आनंदकंद है ऐसा सम्यग्दृष्टि देखते है।

स्वसंवेदनज्ञानसे गम्य आत्मा

निश्चय मोक्षमार्ग है वह निर्विकल्प समाधि है। उससे उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय आनंदका अनुभव जिसका लक्षण है ऐसा स्वसंवेदनज्ञान वह ज्ञान है, शास्त्र अभ्यास वह ज्ञान नहीं,

शुभ-अशुभ रचना वचनकी, परित्याग कर रागादिका ।
उसको नियमसे है नियम जो ध्यान करता आत्मका ॥१२०॥

परमागम
श्री नियमसार

लेकिन निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण वह ज्ञान है। सुखानुभूति मात्र लक्षण स्वसंवेदनज्ञानसे आत्मा जाननेमें आये ऐसा है, उसके अतिरिक्त जाननेमें आये ऐसा नहीं है। निर्विकारी-स्वसंवेदनज्ञानसे जाननेमें आये ऐसा है लेकिन भगवानकी वाणीसे, भगवानकी भक्तिसे जाननेमें आये ऐसा नहीं है। आनंदकी अनुभूतिके स्वसंवेदनज्ञानसे जाननेमें आये ऐसा मैं हूँ और सभी आत्माएँ भी उसको स्वसंवेदनज्ञानसे उसे जाननेमें आ जाते है।

वीतराग सहज सुखानुभूतिमात्रलक्षण स्वसंवेदनज्ञानसे जाननेमें आये ऐसा आत्मा मैं हूँ, मैं कैसा हूँ ?–कि अनंतज्ञान, अनंत आनंद आदि स्वभावसे परिपूर्ण आत्मा मैं हूँ और सभी भगवान आत्मा भी ऐसे है। पुनश्च कैसा हूँ ?– कि मन-वचन-कायाके व्यापारसे और दया-दान-भक्तिके भावसे मैं भिन्न हूँ ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। सर्व विकल्प विभावसे रहित हूँ। जिस भावसे तीर्थंकरगोत्रका बंध हो वह भाव भी विभावभाव है, उससे मैं रहित हूँ, सर्व विकारी पर्यायसे शून्य और मेरी अनंत शक्तिसे परिपूर्ण हूँ–ऐसा सम्यग्दृष्टि स्वयंकी सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें आत्माको जानते है, मानते है, अनुभव करते है।

समकितीको उपशमसमकित हो, क्षयोपशमसमकित हो या क्षायिकसमकित हो लेकिन ज्ञान तो क्षयोपशम है, क्षायिकज्ञान तो केवलीको ही होता है, नीचेकी भूमिकावालेको चौथे-पाँचवें आदि गुणस्थानवाले छद्मस्थको तो ज्ञान क्षयोपशमिक ही होता है, वह क्षयोपशमज्ञानका लक्षण क्या ?–कि निर्विकारी आनंद सहित जो ज्ञान होता है उसे समकितका क्षयोपशमज्ञान कहनेमें आता है। सम्यग्दर्शन होते, आत्म-अनुभव होनेपर उसकी पर्यायमें पूर्ण आत्मा आता नहीं लेकिन सभी शक्तियाँ पर्यायमें एकदेश प्रकट होती है। तेरा आत्मा तुझे किस प्रकार जाननेमें आये ?–कि आनंदकी अनुभूति सहितके स्वसंवेदनज्ञानसे आत्मा जाननेमें आये ऐसा है, जब अनंत शक्तियाँ एक अंशमें प्रकट हो तब आत्मा जाननेमें आता है।

ध्याता पुरुष किसका ध्यान करता है ?

जिसे आत्मा जाननेमें आया ऐसा ध्याता पुरुष, धर्मीजीव कि जिसे स्वसंवेदन आनंदकी अनभूति सहितका ज्ञान एक अंश प्रकट हुआ है, वह प्रकट हुई दशाका ध्यान-ज्ञानी करता नहीं है। अनुभवकी जो पर्याय है वह एकदेश प्रकट पर्यायरूप है, तदपि ध्याता पुरुष-ध्येयका

परद्रव्य काया आदिसे परित्याग स्थैर्य, निजात्मको।
ध्याता विकल्पविमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग है ॥१२१॥

ध्यान करनेवाला पुरुष वह प्रकट पर्यायका ध्यान करता नहीं है, धर्मी किसका ध्यान करता है ?–धर्मी जीवको सम्यग्दर्शनकी पर्याय प्रकट हुई है तदपि प्रकट हुई उसका ध्यान करता नहीं है। तो किसका ध्यान करता है ?–कि एक समयके पीछे विद्यमान जो सकल-निरावरण-अखंड-एक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज परमात्मद्रव्यका ध्यान करता है। सम्यग्दृष्टिका ध्येय क्या ? सम्यग्दृष्टि धर्मीका विषय क्या ?–कि त्रिकाली आत्मा वह उसका विषय है कि जो सकल-निरावरण-एक अखंड वस्तु है।

ज्ञानकी वर्तमान पर्यायमें अखंड-एक-प्रतिभासमय वस्तु है वह जाननेमें आती है, चाहे मति-श्रुतज्ञान हो लेकिन उसमें अखंड-एक-प्रतिभासमय आत्मा प्रत्यक्ष जाननेमें आता है। प्रत्यक्ष भगवान शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद वस्तु है वह पर्यायमें जाननेमें आ जाती है ऐसा जो आत्मा है वह अविनश्वर है–कभी भी उसका नाश होता नहीं है। पर्याय है वह बदलती है लेकिन वस्तु है वह त्रिकाल निजानंद ध्रुव वस्तु है। शुद्ध-पारिणामिक परमभाव जिसका लक्षण है, त्रिकाली शुद्ध स्वभावभाव जिसका लक्षण है, ऐसा निजपरमात्मद्रव्य वह ही मैं हूँ–ऐसा ध्याता पुरुष ध्यान करता है। प्रकट हुई पर्याय वह मैं हूँ ऐसा नहीं लेकिन प्रकट हुई पर्याय ऐसा कहती है कि यह त्रिकाली द्रव्य वह मैं हूँ। सम्यग्दर्शनकी प्रकट हुई पर्याय है वह ऐसा कहती है कि यह त्रिकाली है वह मैं हूँ। लेकिन क्षयोपशमज्ञान प्रकट हुवा है वह मैं हूँ ऐसा ध्याता पुरुष भावना करता नहीं है। सम्यग्दर्शन और आनंद सहित ज्ञानकी पर्याय प्रकट हुई है उसका ध्याता पुरुष ध्यान करता नहीं है; मैं खंडज्ञानरूप हूँ ऐसा सम्यग्दृष्टि भावना करता नहीं है। लेकिन प्रत्यक्ष प्रतिभासमय निजपरमात्मद्रव्य मैं हूँ–ऐसा ज्ञानी पुरुष ध्याता है।

इस प्रकार भगवान द्वारा प्ररूपित आगम और अध्यात्मकी सापेक्ष बात की है। ध्रुव वस्तु त्रिकाली है वह निश्चयनयका विषय है और वर्तमान दशा क्षणिक है वह पर्यायनयका विषय है–इस प्रकार दो नयकी अपेक्षासे परस्पर बात की है। नयद्वैयके अभिप्रायको अविरोधपूर्वक कहा गया है। आत्मद्रव्य निश्चयसे शुद्ध है और पर्यायमें भेद है ऐसा निश्चय और व्यवहारके अभिप्रायके अविरोधपूर्वक यह बात कही गई है। पर्याय वह व्यवहार और त्रिकाली वह निश्चय है–ऐसे दोनों नयोंके अविरोधपूर्वक यह कथन करनेमें आया है इसलिये निर्दोष, निर्बाध है–ऐसा विवेकीओंको इस प्रकार जानना चाहिये।

रे त्याग वचनोच्चार किरिया, वीतरागी भावसे।
ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे ॥१२२॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३४ (गाथा-२६)

परकी ममता छोड़कर स्वमें समता करनेका अभ्यास कर !

श्रीमद् ने भी एक पत्रमें यह बात ली है कि उम्रमें छोटा होने पर भी जिसका ज्ञान विशेष है वह वृद्ध है। यही बात ज्ञानार्णवमें शुभचंद्र आचार्यने एक श्लोकमें ली है कि वास्तवमें वृद्ध किसे कहना ?–कि जिन्होंने रागसे भिन्न स्वयंकी चैतन्यशक्तिकी सम्हाल की है वह वास्तवमें वृद्ध है।

वृद्धावस्थामें चल न सके, बैठ न सके, आंखोंसे देख न सके, पीड़ाका पार नहीं हो किन्तु ज्ञानी कहते है कि मैं तो उससे रहित असंग हूँ तो मैं वह बाल-वृद्धादि अवस्थाके दुःखोंसे कष्ट कैसे प्राप्त करूँगा ? वह तो जड़की दशा है, मेरी चीज तो उससे भिन्न ज्ञानानंद है। शेठियाजीका भजन है कि ''गुणीजन जड़सुख है जी जंजाल, आनंदघन आप छे जी मारा ज्ञान...मारा...ज्ञान'' प्रतिकूलता मुझमें है ही नहीं। मैं तो शांतिमें झूलनेवाला आनंदघन आत्मा हूँ। प्रतिकूलता आये तब आत्मा कसोटी पर चकासा जाता है। प्रतिकूलतामें भी शांति रख कि ''प्रतिकूलता मुझमें है ही नहीं, मैं तो शांतिका सागर हूँ' इस प्रकार ज्ञानी संपूर्ण जगतसे पृथक् ही पृथक् जाननेमें आता है।

बाल, वृद्ध, मृत्यु आदि अवस्था पुद्गलकी है उन्हें जड़की नहीं मानना, तथापि स्वयंकी अवस्था ही मानना वह ही मिथ्यात्व है और परकी अवस्था परमें है और मेरी अवस्था मुझमें है इस प्रकार स्व-परमें ज्ञायक रहना उसका नाम धर्म है। यह पूज्यपादस्वामीका इष्ट उपदेश है।

मरण रोग, मुझमें नहीं, इसलिये सदा निःशंक।
बाल, तरुण नहीं वृद्ध मैं, यह सब पुद्गल जोग॥

इस प्रकार जानने पर भी भावना करनेवाला शिष्यको स्वयं प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि भेदभावनाके बलसे शरीरादि सभी वस्तुको मैंने पराई मानी है तो भी लम्बे कालसे अभेद संस्कारके वशसे पश्चात्ताप भी होता है कि अरे ! मैंने यह वस्तुको क्यों छोड़ दिया ? ऐसा

संयम नियम तपसे तथा रे धर्म-शुक्ल सुध्यानसे}
ध्यावे निजात्मा जो परम होती समाधि है उसे ॥१२३॥

प्रश्न उत्पन्न होता है लेकिन उसका समाधान करता है कि मोहसे मैं बारम्बार समस्त पुद्गलोंको भोगा और छोड़ दिया तो अब उस जूठनकी इच्छा किसलिये मैं करूँ ? अर्थात् अब मुझे उन पदार्थोंकी इच्छा ही नहीं है।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा॥३०॥

मोहे भोगवी पुद्गलो, कर्यो सर्वनो त्याग,
मुज ज्ञानीने क्यां हवे, ए एठोंमां राग ? ३०.

श्रीमद्जी कहते हैं कि ''सर्व जगत छे एठवत, अथवा स्वप्न समान, वह कहीए ज्ञानीदशा, बाकी वाचा ज्ञान।''

भगवान सच्चिदानंद महाप्रभु है लेकिन उसके अज्ञानमें यह जीव परपदार्थमें मोहसे प्रत्येक वस्तुको कितनी बार भोगी और छोड़ दी। लक्ष्मी, कीर्ति, स्त्रीका शरीर आदि सभीको अनंतबार भोगे अर्थात् कि उसके प्रति राग किया और छोड़ दिया। अब उन भोगे हुए पदार्थकी जूठनके लिये क्या इच्छा ? वह तो कुत्तेका कार्य है।

जैसे रास्ते पर मनुष्य चला जा रहा हो, रास्तेमें अनेक वृक्षोंकी छाया आये लेकिन उसमेंसे निकलनेवाला मनुष्य तो एक ही है वैसे आत्मा अनादि-अनंत शाश्वत है, उसमें अनेक शरीरोंकी छाया आती है और जाती है लेकिन आत्मा तो एक शाश्वत विराजमान है। इस प्रकार अनेक शरीरका भोग अनंतबार किया और छोड़ दिया है तो ऐसे जूठन-पदार्थकी इच्छा किसलिये करना ?

ज्ञानीकी ऐसी भावना परसे सूक्ष्म बात यह निकलती है कि शरीरमें कहीं भी मीठाश लगना वह अज्ञानीकी मान्यता है। शरीरमें दुःख-प्रतिकूलता आने पर मुझे दुःख हुआ वह मिथ्यादृष्टिकी मान्यता है।

जो ज्ञानी स्वयंके अनाकुल आनंदकी निरंतर इच्छा करता है–भावना करता है और आनंदका अनुभव करता है ऐसे ज्ञानीके शरीर और भोगकी भावना कैसे हो सके ? ९६००० रानीयोंके भोगमें मस्त सम्यग्दृष्टि चक्रवर्तीको भी शरीर और भोगकी चाहना नहीं है, अंदरसे

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवाससे।
वा अध्ययन मौनादिसे क्या! साम्यविरहित साधुके॥१२४॥

ही रुचिका अभाव हो गया है। जैसे लकड़ी लगनेसे टूटी हुई कमरके कारण बिल्ली लंगड़ाते हुए चलती है वैसे धर्मीको शरीर राग और आत्माके बीच भेदज्ञानकी लकड़ी पड़ी है इसलिये अब जो राग शेष है वे सभी मंद हो गये है। रागका राग होता नहीं। एक आत्माके ज्ञानानंदकी भावना है उसे ही सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

सम्यग्दृष्टिका बाह्यसे त्याग दिखाई नहीं देता लेकिन अंतरसे भोगका त्याग हो गया है। जब कि मिथ्यादृष्टि त्यागी, मुनि हो, बाहरसे सभीका त्याग हो लेकिन अंतरमें देहादि संयोग मेरा है और रागसे मुझे लाभ है ऐसी बुद्धि है वह भोगी ही है। सम्यग्दृष्टिने तो देह और रागसे भिन्न स्वयंका आत्मा जान लिया है। इसलिये ९६००० रानियोंका भोग होने पर भी वे भोगी नहीं है क्योंकि वे भोगकी वांछासे रहित है।

अनादिकालसे मैं संसारी जीव ज्ञानानंद शुद्ध चैतन्यकंदका आश्रय न लेकर अविद्याके आवेशके वश होकर समस्त पुद्गलको भोगे और छोड़ दिये है तो अब उसे नाकका मैल समान जूठनको भोगनेकी भावना कैसे हो ? ज्ञानानंद शुद्ध चैतन्यका आश्रय लेने पर अब उच्छिष्ट भोगोंकी भावना मुझे नहीं है...नहीं है...नहीं है।

हे भाई ! यदि तू आत्मार्थी हो तो तुझे परकी ममताको छोड़कर स्वमें समता करनेका अभ्यास करना चाहिये। तेरा अभ्यास वह ही धर्म है। शेष बाह्यकी क्रिया या दुनियाको समझानेसे कभी धर्म नहीं है।

परका एक रजकण तो मेरा नहीं है लेकिन रागके साथ भी मुझे तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है–ऐसी दृष्टिवाले धर्मात्माको त्याग की हुई वस्तुको ग्रहण करनेकी भावना होती नहीं। उसे तो एक ही भावना-चैतन्यमें एकाग्र होनेकी होती है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २४ का शेष भाग)

अनेकान्तके यथार्थ मर्मको जाने नहीं तथा एक द्रव्य दूसरे अन्य द्रव्यका कुछ करे इत्यादि प्रकारका पक्ष रखकर शास्त्र वांचन करे तो उसे शास्त्रके अनेक विवक्षाओंके कथनका समाधान नहीं कर सकेगा, वह शास्त्रके कथनको ही पकड़कर भ्रममें पड़ जायेगा–अर्थात् कि उसका ज्ञान मिथ्या रहेगा, वह शास्त्रमें कहे ज्ञानीओंके आशयको समझ नहीं पायेगा।

सावद्यविरत, त्रिगुप्तमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१२५॥

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

निश्चय सम्यक्त्वसे ही मोक्षमार्गका प्रारम्भ है। निश्चय सम्यक्त्वके बिना जीव सम्यग्दृष्टि कहा जाता नहीं।

पुनश्च जिसे स्व-परका यथार्थ श्रद्धान नहीं है, परंतु जैनमतमें कहे हुए देव-गुरु और धर्म इन तीनोंको मानता है तथा अन्यमतमें कहे हुए देवादि तथा तत्त्वादिको मानता नहि, तो इस प्रकारके सिर्फ व्यवहार सम्यक्त्व द्वारा वह सम्यक्त्वी नामको प्राप्त नहीं करता है। अतः स्व-पर भेदविज्ञानपूर्वक जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है उसे सम्यक्त्व जानना। (पृष्ठ-३४३)

यह देखो, निश्चय-व्यवहारकी कैसी स्पष्ट बात है। यथार्थ श्रद्धानसे निश्चय सम्यक्त्व हो तभी जीव सम्यक्त्वी बनता है। निश्चय सम्यक्त्व ही मोक्षमार्गरूप है, व्यवहार सम्यक्त्व तो शुभ-आस्रवरूप है। वह कोई मोक्षमार्गस्वरूप नहीं है। सिद्धान्तमें 'सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' ऐसा कहा है उसमें निश्चय सम्यग्दर्शनकी बात है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'–यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। भूतार्थके आश्रित सम्यग्दर्शन कहा (समयसार गाथा-११) उसमें तथा इस सम्यग्दर्शनमें कोई फर्क नहीं है। ऐसा सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थानमें प्रकट होता है, तो तबसे लेकर सिद्धदशा तक भी रहता है। शुभरागरूप व्यवहार-सम्यग्दर्शन तो सिद्धदशामें टिकता नहीं है। इस प्रकार निश्चय सम्यग्दर्शन ही मोक्षमार्गरूप है। चौथे गुणस्थानसे लेकर ही सभी जीवोंको ऐसा निश्चय सम्यक्त्व होता है। ऐसे निश्चय सम्यक्त्वके बिना धर्मकी या मोक्षमार्गकी शुरूआत ही नहीं हो सकती।

आत्मवस्तुका जैसा स्वभाव है उसी प्रकार श्रद्धान में लेना वह सम्यक्त्व है और वह वस्तुका भाव है अर्थात् निश्चय है। ऐसे निश्चयसम्यक्त्वकी भूमिकामें धर्मीको वीतरागी देव-शास्त्र-गुरुकी पहिचान भक्ति उनके प्रति उत्साह, प्रमोद, बहुमान तथा विनय आते है। परंतु इस वजहसे कोई जीव इस प्रकारके सिर्फ व्यवहारमें ही संतुष्ट हो जाय तथा निश्चयसम्यक्त्वको भूल जाय तो उसे सम्यग्दृष्टि नहीं कहते हैं। यदि व्यवहारके साथ ही साथ निश्चयसम्यक्त्व (शुद्धात्माकी निर्विकल्प प्रतीत) होता–(दोनों साथ में रहे हो) तो ही उसका व्यवहार सच्चा है, अन्यथा वह तो व्यवहाराभास है। निश्चयश्रद्धा तो है नहीं और सिर्फ व्यवहारके शुभरागमें

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१२६॥

संतुष्ट हो जाता है इसलिये वह रागको ही मोक्षमार्ग माने बिना रहेगा नहीं, अतः श्रद्धा मिथ्या ही है। इस प्रकार व्यवहारके आश्रयसे मोक्षमार्ग है ही नहीं। निश्चयसम्यक्त्वादिके आश्रयसे ही मोक्षमार्ग है। अथवा तो निश्चयसम्यक्त्वादि है वही मोक्षमार्ग है। व्यवहार-सम्यक्त्वादि शुभरागरूप है अतः वह मोक्षमार्ग नहीं है।

अरे भाई, मोक्षमार्ग तो वस्तुके स्वभावकी जातिका होगा या उससे विरुद्ध होगा? निश्चय-सम्यक्त्वका जो भाव है वह तो वस्तुस्वभावकी जातिका ही है और सिद्धदशामें भी वह भाव रहता है। व्यवहारसम्यक्त्वका जो (राग) भाव है वह वस्तुस्वभावकी जातिका नहीं है किन्तु विरुद्धभाव है, सिद्धदशामें वह भाव रहता नहीं है। ऐसी स्पष्ट एवं सीधी बात, जिज्ञासु होकर समझे तो तुरंत समझमें आ जाय ऐसी है। किन्तु जिसे समझना नहीं है और वादविवाद करना है वह तो ऐसी स्पष्ट बात में भी कुछ न कुछ कुतर्क करेगा। क्या हो सकता है? किसी दूसरेको जबरदस्तीसे समझा सके ऐसा तो है नहीं।

'तत्त्वार्थश्रद्धानभ्को सम्यक्त्व कहा है; तत्त्व अर्थात् जिस वस्तुका जैसा भाा हो वैसा उसे जानना चाहिये, तो ही उस वस्तुको सही रूपसे मानी है ऐसा कहा जायेगा। जीवमें ज्ञानादि अनंत स्वभाव है वह जीवका भाव है; इस अनंत शक्तिरूप भावको भूलकर एक क्षणिक विकार भावके बराबर ही जीवकी किमत माने, तो उसने वास्तवमें जीवके भावको जाना नहीं है। रागसे लाभ माननेवाला वास्तवमें तो उस राग जितनी ही जीवकी कीमत मान रहा है; इस राग द्वारा मुझे जीवका स्वभाव मिल जायेगा इसका अर्थ वह हुआ कि जीवके स्वभावकी कीमत उसने राग जितनी ही मानी है। वह अपने शुद्धस्वभावको अपने सम्यक्भावको, अपने स्वभावकी सही कीमत को जानता नहीं है, अतः बाहरके पदार्थोंका या विकारी भावको अधिक मूल्य देता है और स्वयंको कीमत बिनाका विकारी समझनेकी कल्पना कर लेता है, अतः उसकी श्रद्धा 'सम्यक्' नहीं है परंतु मिथ्या है;–भले ही वह शुद्ध जैनके देव-गुरु-शास्त्रको शुभरागसे मानता हो तो तथा कुदेवादिको मानता न हो–फिर भी इतना करनेसे उसका मिथ्यात्व छूट नहीं जाता। भाई, तेरी कीमत अचिंत्य है, जगतमें महंगे से महंगा चैतन्यरत्न तू ही है, स्वयंकी वस्तुमें प्रवेश करके स्वयंके सच्चे भावको–सच्चे स्वरूपको तू जान तो ही तुझे सम्यक्त्व होगा तथा तेरा मिथ्यात्व टलेगा। स्व-परका भेदज्ञान तब ही सच्चा कहलाता है कि जब शुद्धात्माका श्रद्धान साथमें होता है; देव-गुरुकी पहिचान तब ही सच्ची कही जाती

संयम-नियम-तपमें अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२७॥

है कि यदि शुद्धात्माका श्रद्धान साथमें हो। नवतत्त्वकी श्रद्धा तब ही सम्यक् कहलाती है कि जब भूतार्थमोक्षमार्गके सन्मुख होकर शुद्धात्माका श्रद्धान करे। केवल व्यवहारसे वह सब करता रहे और यदि शुद्धात्माके श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व न करे तो उस जीवको सम्यग्दृष्टि कहते नहीं है। अतः शुद्धात्माके श्रद्धानरूप जो निश्चय-सम्यक्त्व है वही सच्चा सम्यक्त्व है और वही मोक्षमार्ग है–ऐसा जानना।

अंतरमें अपने शुद्ध स्वभावका अवलंबन लेकर जो प्रतीति हुई उस सम्यक् प्रतीतिका भाव स्वभावमेंसे आया है, वह प्रतीति स्वभावकी जातिकी है, सिद्ध भगवानकी प्रतीति तथा छोटेसे छोटा अर्थात् चतुर्थ गुणस्थानवाले समकितीकी प्रतीति उन दोनोंकी प्रतीतिमें कोई फर्क गिननेमें नहीं आया है; जैसा शुद्धात्मा सिद्धप्रभुकी प्रतीतिमें है वैसा ही शुद्धात्मा समकितीकी प्रतीतिमें है। बाहरके आश्रयसे हुआ व्यवहारश्रद्धाका भाव सभी जीवोंको एकसमान होता नहीं है। परंतु इससे ऐसा नहीं समझ लेना कि वह भाव चाहे जैसा (विपरीत भी) हो सकता है। नवतत्त्वको जो विपरीत मानता हो, देव-गुरु-शास्त्रको अन्यथा मानता हो, सर्वज्ञता आदिको न मानता हो, ऐसे जीवको तो व्यवहारश्रद्धा भी विपरीत है। जिसे नवतत्त्वकी, देव-गुरु-शास्त्रकी या स्व-परके भिन्नत्वकी पहचान नहीं है उसे तो शुद्धात्माका श्रद्धान बहुत दूर है। यहाँ तो इन सबके अलावा आगेकी बात बतानी है कि यह सब करनेके बावजूद भी यदि शुद्धात्माकी निर्विकल्प प्रतीति करे तो ही सम्यग्दृष्टि होता है, इसके बिना सम्यग्दृष्टि नहीं कहलायेगा।

शुद्धात्माके श्रद्धानरूप ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन तो सातवें गुणस्थानमें होता है, छठ्ठे-पाँचवें-चौथे में निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता है–ऐसा कोई कहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि वहाँ मोक्षमार्ग नहीं होता है, अरे भाई ! यह तो मार्ग की बहुत विपरीतता है। चौथे-पाँचवें-छठ्ठेमें निश्चयके बिना सिर्फ व्यवहारसे ही यदि तू मोक्षमार्ग मान लेता है तो उसे आचार्य भगवानने 'व्यवहारमूढता' कहा है। निश्चय बिनाके सिर्फ व्यवहारको मोक्षमार्गमें गिनते नहीं है। मोक्षमार्गमें जो सम्यग्दर्शन कहा है वह शुद्धात्माके श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व है, और ऐसा निश्चयसम्यक्त्व चौथे गुणस्थानमें नियमपूर्वक होता है, अतः वहाँ एकदेश मोक्षमार्ग भी माना जाता है। सम्यक्त्वका ऐसा सच्चा स्वरूप न पहचाने और उसमें घोटाला करे उसने तो मोक्षमार्गका सच्चा स्वरूप जाना नहीं है। मोक्षमार्गका सच्चा स्वरूप समझे तक नहीं तो उसकी प्राप्ति तो कहाँसे करेगा ? अतः यहाँ पहले ही मोक्षमार्गके निश्चय-सम्यक्त्वका स्वरूप कहा है। सम्यक्त्वकी इतनी बात करनेके बाद उसके साथके सम्यग्ज्ञानकी बात कहते हैं। (क्रमशः) ✻

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

प्रथम सम्यग्दर्शनको समझो, पश्चात् विशेष स्थिरता होने पर प्रतिमा आदि होते हैं। सम्यग्दर्शनके बिना व्रतादि नहीं होते। आत्माकी अंतर्स्थिरता वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसकी प्रतीति होनेके पश्चात् विशेष आनन्द आता है। उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। शरीरसे बाह्य ब्रह्मचर्यका पालन करे वह शुभ है। अभव्यको भी वैसा ब्रह्मचर्य होता है परन्तु उसमें कोई विशेषता नहीं है।

यहाँ पर्यायसत्ताकी बात चलती है। ज्ञानपर्याय अपनी है इसलिए निश्चय है, रागकी पर्याय वह वास्तवमें अपनी नहीं है।

यहाँ चारित्रपर्यायके गुण–दोषकी बात नहीं है। जो–जो तीव्रता–मन्दता हो उसे ज्ञान जानता है। यह जानने योग्य है—ऐसा जानता है। ''ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं।''

यहाँ कोई प्रश्न करे कि—विपरीत प्ररूपणा करनेवालेके प्रति त्याज्यवृत्ति न आये तो वह मिथ्यादृष्टि है, —ऐसा कथन आता है उसको क्या समझना ? सत्तास्वरूपमें कहते हैं कि—जो सच्चा जैन होगा वह तो प्रयोजनभूत रकममें अन्य द्वारा सर्वथा बाधा नहीं आने देगा, तथा बाधा देखकर अपनेको तलाक (ऐसा नहीं ऐसी अस्वीकृति) न आए तो वह जैनाभासी–मिथ्यादृष्टि ही है। इसका क्या अर्थ ?

समाधान :—जो विकल्प उठता है वह चारित्रगुणकी पर्यायका दोष है। ज्ञानमें हेय–उपादेयपना नहीं है। ज्ञानने उस प्रकारके ज्ञेयको जाना है। विपरीत बात जानी इसलिए साधकको तलाकपनेका राग आया है ऐसा नहीं है, परन्तु साधकदशामें पूर्ण वीतरागता नहीं है, इसलिए राग आता है। मिथ्यादृष्टिकी बात सत्य नहीं है—ऐसा विकल्प साधकदशामें आये बिना नहीं रहता। सामनेवाला जीव मिथ्या प्ररूपणा करता है, इसलिये तलाकपनेका राग आता है—ऐसा नहीं है; ज्ञानने जाना इसलिये राग आता है—ऐसा भी नहीं है; परन्तु अपनी चारित्र पर्यायका दोष है, इसलिए तलाकपनेका विकल्प आता है।

शास्त्रमें अनेक प्रकारके लेख आते हैं—शब्दार्थ, आगमार्थ, भावार्थ, नयार्थ, मतार्थ

नहिं राग अथवा द्वेषसे जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१२८॥

आदिका ज्ञान करना चाहिए। ज्ञानमें पर्यायसत्ता ज्ञात होती है। परकी सत्ताको जानना वह व्यवहार है। चारित्रगुणकी पर्यायको जानना वह व्यवहार है। अखण्ड स्वभावको जानना वह निश्चय है। साधक जीवको राग आता है। स्व–पर प्रकाशक ज्ञानस्वभाव है, इसलिए राग हुआ है ऐसा नहीं है, राग हुआ इसलिए ज्ञान प्रकट हुआ ऐसा भी नहीं है। अपनेको जानते हुए पर तथा रागको व्यवहारसे जानता है। राग इस काल ऐसा क्यों है—ऐसा प्रश्न नहीं रहा और अच्छा तथा बुरा ऐसा भी नहीं रहा। इसप्रकार रागसे ज्ञान भिन्न होनेके कारण ज्ञानपर्याय आत्माके साथ अभेद होती है वह धर्म है।

ज्ञान ज्ञानसत्ताको जानता है। ज्ञान स्वयं ज्ञाता और ज्ञेय दोनों है। तथा ज्ञान दर्शनसत्ताको जानता है। दर्शन अर्थात् देखना। मुझमें देखनेका गुण है—ऐसा ज्ञान जानता है। इसप्रकार स्वच्छत्व, विभुत्व, प्रभुत्व आदि अनन्त गुण हैं उनको ज्ञान जानता है। अनन्त गुणोंको ज्ञान यथावत् जानता है। प्रत्येक गुण भिन्न–भिन्न है—ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु उनमें प्रदेशभेद नहीं है। ज्ञान अमुक स्थान पर रहता है और दर्शन अमुक स्थान पर रहता है—ऐसा भेद नहीं है। सर्व गुण असंख्यप्रदेशमें व्यापक हैं, इसलिए पृथक्त्वभेद नहीं है; तथापि अन्यत्वभेद है। ज्ञानगुण वह दर्शनगुण नहीं है, आनन्द वह आनन्द है, दर्शन वह दर्शन है—इसप्रकार प्रत्येक गुणको भिन्न–भिन्न जानना वह ज्ञानका कार्य है।

आत्मद्रव्यकी सत्ता, गुणकी सत्ता और पर्यायकी सत्ताको ज्योंकी त्यों जानना वह धर्म है। ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य वह ज्ञेय है। जैसा ज्ञेय है वैसा ज्ञान जानता है और ज्ञेयका जैसा स्वरूप है वैसा ज्ञानमें ज्ञात होता है।

आत्मामें अनन्तगुण हैं। प्रत्येक गुण दूसरेसे अन्यत्वभेदरूप है। प्रत्येक गुण क्षेत्रसे पृथक् नहीं है परन्तु स्वभावसे पृथक् है—ऐसा ज्ञान जानता है। ज्ञान ज्ञानको जानता है, दर्शन एवं चारित्रको भी जानता है। प्रत्येक गुणका परिणमन स्वभाव भिन्न–भिन्न है—ऐसा ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ तो ज्ञान केवलज्ञानरूप क्यों नहीं हुआ ? और चारित्र पूर्ण क्यों नहीं हुआ ?—यह प्रश्न नहीं रहता। प्रत्येक गुणका परिणमन स्वतंत्र है ऐसा ज्ञान जानता है। किसी धर्मीको अवधिज्ञान हो जाता है—अर्थात् तीन ज्ञान प्रकट हो जाते हैं परन्तु चारित्र प्रकट नहीं होता और छठवें गुणस्थानमें मुनिको मति–श्रुत दो ज्ञान हों और मुनिको चारित्र होता है—ऐसा क्यों ? ऐसा आश्चर्य ज्ञानमें नहीं है। कोई करोड़ों वर्ष तक मुनिपनेका

रे ! आर्त्त-रौद्र दुध्यानका नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१२९॥

पालन करता है फिर भी केवलज्ञान प्रकट नहीं होता, उसे भी ज्ञान जानता है। गुणस्थानोंमें रही हुई शुद्धता, अशुद्धता या अपूर्णता, निमित्तरूपसे कर्मादि जो–जो प्रकार हों उनको ज्ञान जानता है। रागका उत्पाद अथवा व्यय आदिको ज्ञान जैसे हैं वैसे जानता है।

तथा आत्मामें अनन्त गुणोंकी बाढ़ अथवा प्रवाह है उसे ज्ञान जानता है। उनमेंसे एक गुण अथवा एक पर्याय अल्प जाने तो उसने ज्ञानस्वभावको नहीं जाना है तथा ज्ञेयस्वभावको भी नहीं जाना है। सच्चे ज्ञानके बिना शान्ति नहीं होती।

कोई जीव भगवानके समवसरणमें जाए तथापि उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, तथा कोई जीव मुनिके पास जाए और अल्पकालमें सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तो ऐसा क्यों ? ऐसा प्रश्न ज्ञानमें नहीं है। उस–उस प्रकारका ज्ञेयका स्वभाव है, उसे ज्ञान जानता है। इस प्रकार भूत, वर्तमान और भविष्यकी पर्याय वह ज्ञानका विषय है।

प्रथम अपनी बात कही थी, फिर पर पदार्थोंकी बात कही। जीव और अजीव द्रव्य तथा उनकी सात पर्यायें—इसप्रकार तीनोंकालके नव पदार्थोंको जैसे हैं वैसे ज्ञान जानता है। अजीव पदार्थको ज्ञान जानता है। अजीवसे राग होता है ऐसा माने तो नव पदार्थ नहीं रहते। कर्म अजीव है, राग अथवा पुण्य–पाप विकार हैं, आत्मा चैतन्यमूर्ति है, संवर, निर्जरा और मोक्ष एक समयकी निर्विकारी पर्याय है—ऐसा जानना चाहिए। व्यवहाररत्नत्रयसे संवर माने तो नवको नहीं माना। पुण्य तो विकारतत्त्व है; विकारके कारण संवर माने तो विकारने संवरका कार्य किया और ऐसा होनेसे संवर तथा पुण्यतत्त्व दोनों उड़ जाते हैं। आत्मासे शरीर चलता है ऐसा जो मानता है वह नवको नहीं मानता। शरीर जड़ है और वह स्वतंत्ररूपसे चलता है—ऐसा माने तो अजीवतत्त्वको माना कहा जाएगा। जीवकी इच्छासे शरीर चलता है—ऐसा माने तो नवतत्त्व नहीं रहते।

कारणपरमात्मा–शुद्धकारण जीव वह जीव पदार्थ है, कर्म और शरीरादि अजीव हैं, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र पर्याय प्रकट हो वह संवर तत्त्व है, शुद्धिकी वृद्धि होना वह निर्जरा है। दया–दानादि भाव पुण्य है, हिंसा–झूठ आदि वह पापभाव है, दोनों आस्रव और बंध हैं। सर्वथा बंधरहित होना वह मोक्ष है। नवों पदार्थ स्वतंत्र हैं—ऐसा ज्ञान जानता है। (क्रमशः) ✻

जो पुण्य-पाप विभावभावोंका सदा वर्जन करे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१३०॥

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : २)

तत्त्वनिर्णय करनेकी प्रेरणा

शरीरकी क्रिया अथवा रूपया पैसा वगैरहसे धर्म तो क्या, किन्तु पुण्य भी नहीं होता। रूपये पैसे की यदि तृष्णा घटाई जाय तो पुण्य होता है किन्तु धर्म नहीं होता, जन्म-मरणका अन्त नहीं होता। सच्चे देव, शास्त्र और गुरुके निर्णयके बिना और भगवान आत्माका अर्थात् अपना स्वरूप क्या है इसका निर्णय हुए बिना तीन काल और तीन लोकमें न तो किसी जीवकी मुक्ति हुई है, न होती है और न होगी। इसलिए जो जीव अपना हित करना चाहता है उसे सर्वप्रथम यह तत्त्वनिर्णयरूप कार्य करना चाहिए।

अब यहाँ कहते हैं कि तत्त्वनिर्णय करनेमें कोई हानि नहीं है :—

न क्लेशो न धनव्ययो न गमनं देशान्तरे प्रार्थना
केषांचिन्न बलक्षयो न न भयं पीड़ा परस्यापि न।
सावद्यं न न रोग जन्मपतनं नैवान्य सेवा न हि
चिद्रूपस्मरणे फलं बहु कथं तन्नाद्रियंते बुधाः॥१॥

(तत्त्वज्ञानतरंगिणी अध्याय ४)

इस देहरूपी देवालयमें चिदानन्द स्वरूप भगवान आत्मा सिद्धसमान चैतन्यमूर्ति है; उस आत्माके निर्णय करनेमें स्मरण करनेमें क्लेश नहीं होता, धनकी आवश्यकता नहीं होती और धन खर्च नहीं करना पड़ता। इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि धनकी तीव्र तृष्णा रखकर आत्माका निर्णय हो जायगा। धनकी तृष्णाको तो पात्र जीव कम करता ही है। देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना–पूजनादि सत्कार्योंमें वह अपनी लक्ष्मीको लगाता है। किन्तु धनकी तृष्णा कम करनेसे पुण्य होता है, धर्म नहीं। आत्माको पहिचाननेके लिए धनका खर्च नहीं करना पड़ता, अर्थात् धनका खर्च करनेसे आत्माकी पहिचान नहीं होती; वह तो तत्त्वनिर्णयसे ही होती है।

पैसा खर्च करके धर्म माननेवालेसे कहते हैं कि भाई ! धन खर्च करके उसमें धर्म

जो नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे॥१३१॥

मनवानेवाले कुगुरु तो तुझे अनन्तबार मिले और तूने भी उसमें धर्म मान लिया किन्तु उसमें धर्मका होना अशक्य है। आत्माको पहिचाने बिना किसीको भी तीन काल और तीन लोकमें धर्म नहीं हो सकता। आत्माको पहिचाननेके लिए न तो देशान्तर जाना पड़ता है और न किसीकी प्रार्थना भी करनी होती है।

प्रश्न :—भगवानकी प्रार्थना भक्ति तो करना चाहिए न ?

उत्तर :—मुमुक्षुको वीतराग भगवानका बहुमान आता है और प्रार्थना–पूजा करता है; उसमें पुण्य है। किन्तु तीर्थंकर भी किसीको मोक्ष नहीं दे सकते। भगवानका बल भगवानके पास होता है वह किसी दूसरोंको काम नहीं आ सकता। भगवानने सत्यमार्ग बताया है, जो जीव उसे समझ लेता है उसकी मुक्ति होती है। जो सच्चे मार्गको समझता है उसको निमित्तरूप भगवानके प्रति बहुमान होता है—किन्तु भगवान किसीको समझा नहीं देते। जीव अपनी योग्यताके बलसे ही समझता है। और आत्माका निर्णय करनेमें शक्तिका क्षय नहीं होता, प्रत्युत आत्माकी पहिचानसे तो गुणकी वृद्धि होती है, निर्मल दशा प्रकट होती है। और वह सावद्य नहीं है अर्थात् आत्माकी पहिचान करनेमें किसीकी हिंसा नहीं होती, और उसमें न तो रोग है और न जन्म-मरण। आत्मस्वरूपकी पहिचान करनेके लिए किसीसे दीनता भी नहीं करनी पड़ती; इस प्रकार आत्माकी पहिचान करनेमें कोई कठिनाई नहीं है और उसकी पहिचान करनेका बहुत बड़ा फल है। तब फिर हे सयाने पुरुषों ! उसे क्यों नहीं स्वीकार करते ? उसको आदरपूर्वक क्यों नहीं अंगीकार करते हो ?

परसे बिलकुल भिन्न भगवान आत्मा अनन्त गुणोंसे युक्त बिराज रहा है किन्तु उसको अपनी पहिचान अनन्तकालसे नहीं है। उसकी पहिचान करनेका बहुत बड़ा फल है, तब फिर बुद्धिमान पुरुष ऐसे तत्त्वज्ञानका उद्यम क्यों नहीं करते ? इस जीवने अनन्तकालमें सत्समागमसे आत्मतत्त्वकी रुचि ही नहीं की। इसलिए इसकी प्रेरणा करते हैं। ऐसा नहीं कि जगतमें सबकी सेवा करनेसे और सबको अच्छा मनानेसे धर्म हो जायगा। जो समस्त धर्मोंको एक मानकर जैनधर्मका अन्य धर्मोंके साथ समन्वय करना चाहते हैं उसको वीतरागदेवके कहे हुए तत्त्वका निर्णय ही नहीं है। क्या अमृतके साथ विषका समन्वय हो सकता है ? कभी नहीं। जो तत्त्वनिर्णय नहीं करता उसके आत्माका कल्याण कभी नहीं हो सकता और उसका परिभ्रमण नहीं मिटता। इसलिए जो तत्त्वनिर्णयका अवसर पाकरके भी तत्त्वनिर्णय नहीं करता, उसे उलाहना देते हुए कहते हैं कि—

जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा, सर्व वेद समूह रे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१३२॥

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाई।
ते धिट्ठ दुट्ठचित्ता अह सुहडा भवभयविहूणा॥

जिसको सत्समागम–सद्गुरुओंका योग मिलता है फिर भी जो धर्मवचनोंको नहीं सुनते, तत्त्वनिर्णय नहीं करते वे दुष्ट और धीठ मनवाले मूर्ख हैं। अरे जीव ! अनन्तकालमें यह नरभव मिला, फिर भी चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्माकी पहिचान नहीं करता, तब तेरा अवतार कहाँ होगा ? तुझे कहाँ शरण मिलेगी ? जो यह निर्णय नहीं करता कि आत्मा देह, मन और वाणीसे भिन्न है और सत्समागम मिलने पर जिसे सुननेकी भी फुरसत नहीं मिलती वह दुर्बुद्धि है, उसको अपनी ही दरकार नहीं है। जो भगवानके मार्गको नहीं समझते वे भवभयसे रहित सुभट हैं। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान भी संसारसे भयभीत हुए और स्व-स्वरूपका भान करके संसारसे दूर सुदूर भागे; जिस संसारसे भगवान भी डरे उस संसारके भयसे न डरनेवालेको बड़ा सुभट कह करके शास्त्रकारने उपहास किया है।

जो वीतरागदेव उसी भवसे मोक्ष जानेवाले हैं किन्तु अभी राजपाटमें लगे हुए हैं, उन्हें वहाँ यह भान तो है कि यह राग मेरा स्वरूप नहीं, फिर भी वे विचार करते हैं कि अहो ! जब तक स्वरूपमें स्थिर हो करके मैं इस रागको नहीं छोड़ूँगा तब तक वीतरागता नहीं आयेगी। यों विचार करके वे भी संसारसे (रागद्वेषसे) हट गये और स्वरूपमें स्थिर हो गये—स्वरूपमें समा गये। जिन्हें इस संसारसे भय नहीं लगता वे विपरीततामें महा सुभट हैं; वे संसारकी होली जलानेके लिए हमेशा तैयार रहते हैं, किन्तु तत्त्वज्ञानका अभ्यास नहीं करते। लौकिक पढ़ाईमें तो कई वर्ष व्यतीत कर देते हैं किन्तु आत्माको समझे बिना वह पढ़ाई किस कामकी ? आत्माकी पढ़ाईके सिवाय अन्य विद्या वास्तवमें विद्या ही नहीं है। आत्माकी पहिचानके बिना सारा समय दूसरोंकी पंचायतमें और रागद्वेषरूप होलीमें ही चला गया, किन्तु जीव यह निर्णय नहीं करता कि वीतराग भगवानने क्या कहा है ? अरे जीव ! आत्माकी पहिचानके बिना तूं मरकर कहाँ जायगा ? ज्ञानी व्यवहारधर्ममें लीन नहीं होता, स्वरूपकी अस्थिरता है इसलिए दया-व्रत-पूजा इत्यादिके शुभभाव आ जाते हैं। जो आत्माकी दरकार नहीं करते और वकालत, व्यापार, खान-पान इत्यादिमें लगे रहते है वह 'अशुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि' है। वह दो प्रकारसे पापी है, एक तो विषय कषायादिके अशुभभावका पाप और दूसरा बड़ा पाप मिथ्यात्वका।

जो नित्य उत्तम धर्म-शुक्ल सुध्यानमें ही रत रहे।
स्थायी समायिक है उसे यों केवलीशासन कहे॥१३३॥

यदि कोई जीव सम्यग्दर्शनके बिना व्रत, तप, भगवानकी भक्ति, पूजा, दान, साधर्मीवात्सल्य इत्यादि किया करे तो उसमें पुण्य है, धर्म नहीं। यदि पूजा दान इत्यादिमें रागको घटाये तो पुण्य होगा, किन्तु धर्म नहीं होगा। उससे जन्म-मरणका अंत नहीं होगा, भवका नाश नहीं होगा, वह पंचमगुणस्थानी श्रावक नहीं कहलायेगा; आत्मभानके बिना व्रत, तप, पूजा, भक्ति सब कुछ करे तो भी वह मोक्षमार्ग नहीं है, परमार्थ जैन वह नहीं है।

प्रश्न :—अरे ! उसे जैनमेंसे भी अलग कर दिया ?

उत्तर :—जैन तो उसे कहते हैं जो सम्यक्त्वादि द्वारा मिथ्यात्वादि मोह शत्रुको जीतें; अथवा जिनदेवके कहे हुए मार्गकी जो सम्यक् उपासना करे वही सच्चा जैन है। यह जैनमेंसे अलग करनेकी बात नहीं है किन्तु अजैनमेंसे सच्चा जैन बनानेकी बात है।

जो पहले कहा है वह अशुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि है और दूसरा शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि। वह व्रत करता है, उपवास करता है, भगवान व मुनिवरोंकी पूजा-भक्ति करता है, दान करता है—इन सब कार्योंमें मन्द राग करके पुण्य बन्ध करता है; किन्तु 'मैं कौन हूँ' इस वस्तुका निर्णय नहीं करता, और आत्माके निर्णयके बिना व्रत, तप, संयम नियम इत्यादि अनेक प्रकारकी शुभभावकी क्रियाको ही धर्म समझ बैठता है। वह पुण्यमें मग्न है—व्यवहारमें लीन है, उसे भगवानने धर्मी नहीं कहा है।

प्रश्न :—आप तो ऐसी बात कहते हैं जिससे झगड़ा खड़ा हो जाय ?

उत्तर :—यह ऐसी बात नहीं है जिसमें झगड़ा खड़ा हो जाय किन्तु यह तो झगड़े टालनेकी बात है। यदि कोई इस बातको समझ ले तो एक भी झगड़ा न रहे। झगड़ा तो अनसमझसे होता है। सच्ची समझमें कोई झगड़ा नहीं है।

जिसे सारा संसार माने वही मार्ग सच्चा हो ऐसा नियम नहीं है; किन्तु वीतरागदेवने जो मार्ग कहा है इसे यथार्थ समझ लेना ही सच्चा मार्ग है। आत्माको पहिचाने बिना यदि कोई व्रत, तप, दान, इत्यादि शुभराग करे और उसमें धर्म माने ते उसके शुभभावके साथ मिथ्यात्व भी है। धर्म उसको नहीं है।

भगवान आत्मा देह, मन, वाणीकी क्रियासे रहित, चिदानन्दस्वरूप है, परका अकर्ता है, पुण्य-पाप उसका स्वरूप नहीं है; ऐसे आत्माके भान बिना जो व्यवहारधर्मक्रियामें—शुभक्रियामें लीन है वह भगवानके मार्गको नहीं जानता। उसके परिणाममें वर्तमान कुछ शुभभाव है, किन्तु शुभभाव करते करते मिथ्यादृष्टिपना तीन कालमें भी नहीं टल सकता।

(शेष देखे पृष्ठ ३१ पर)

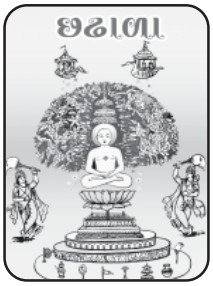

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा-१३)

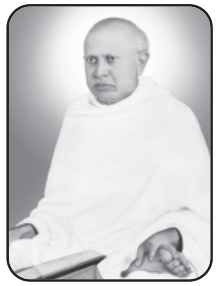

गृहीत मिथ्याज्ञानका स्वरूप और उसे छोड़नेका उपदेश

एकान्त-वाद-दूषित समस्त विषयादिपोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुतको अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥१३॥

वीतरागी शास्त्र निजस्वरूपका ऐसा निर्णय कराते हैं कि मैं ज्ञान हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मेरी क्रिया है। राग-द्वेषको ज्ञान कहते नहीं है। जैसे सूर्यके किरणमें अंधकार नहीं वैसे ज्ञानसूर्यके किरणोंमें राग-द्वेष नहीं है। जैसे केवलज्ञानमें राग नहीं वैसे मति-श्रुतज्ञानमें भी राग नहीं है, ज्ञान तो ज्ञान ही है, ज्ञान वह राग नहीं है। रागको जाननेके समय ज्ञान तो ज्ञान है और राग वह राग है; दोनों पृथक् है, एक हो गये नहीं है–अहा, ऐसा भेदज्ञान वह ही वास्तविक ज्ञान है। 'भेदज्ञान वह ज्ञान है, बाकी बूरो अज्ञान।'

मतिश्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनोंकी जाति समान है। मतिश्रुतज्ञानका सामर्थ्य चाहे अल्प, वह अल्पकाल रहता है और अल्प जानता है, और केवलज्ञानका सामर्थ्य अनंत-अपार, वह अनंतकाल रहे और सब कुछ जाने–फिर भी दोनों ज्ञान जाननहारस्वरूपी ही ही। अपूर्ण और पूर्णरूप चाहे भेद हो, लेकिन स्वरूपमें भेद नहीं है। दोनों रागसे पृथक् स्वरूपवाले ही है। एक ज्ञान रागवाला और दूसरा ज्ञान राग बिनाका–इस प्रकार कोई दो प्रकारके ज्ञान नहीं है। सभी ज्ञान राग बिनाका ही है। मतिज्ञान हो या केवलज्ञान हो–किसीमें भी राग चला गया नहीं है, रागसे वह भिन्न ही है। भाई ! ऐसे तेरे ज्ञानको एकबार निर्णयमें तो ले। ऐसा ज्ञानस्वरूपको दिखाये वे यथार्थ शास्त्र है; और जिन्होंने ऐसे ज्ञानस्वरूपको निर्णयमें लिया और शास्त्र अभ्यास यथार्थ। सत्शास्त्रोंका रहस्य यह है कि परसे भिन्न स्वयंके ज्ञानस्वभावको अनुभवमें लिया। ज्ञानस्वरूपके अनुभवमें सभी शास्त्रोंका सार समाहित हो गया और ज्ञानचेतना जागृत हो गई। ऐसी ज्ञानचेतना द्वारा ही अनादिका अज्ञान नाश होता

सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्रकी श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे॥१३४॥

है। उससे विपरीत माननेवालेके सुशास्त्रोंका रहस्य परिणमित हुआ नहीं है।

जिनशास्त्र तो वीतरागविज्ञानके ही पोषक है; लेकिन जिनके अभिप्रायमें ही मिथ्यात्व हो उसे शास्त्र क्या करे? वीतरागी शास्त्र पढ़ने पर भी वह कुमतिका त्याग न करे तो मिथ्यात्वका नाश नहीं होगा; वास्तवमें तो उसे शास्त्र अभ्यास है ही नहीं। शास्त्रका वास्तविक वाच्यभाव उसने जाना नहीं है। शास्त्र परसे भिन्न, और स्वयंके गुण-पर्यायोंसे एकत्वरूप ऐसा ज्ञानस्वभाव बतलाते है। शास्त्रका सार ऐसा है कि परभावसे पृथक् ज्ञानस्वभावरूप परिणमित होना। वह ही धर्म और वह ही मोक्षमार्ग। वहाँ बीच रास्तेमें जो व्यवहार–रागादि हो उसे जाननेयोग्य है, आदरकरने योग्य नहीं है; आदरनेयोग्य-अनुभव करने योग्य तो परम ज्ञायकभाव है; उसमें जो ठहरा उसे व्यवहार रहता नहीं है। अहा ! जिनागम ऐसे सर्वोत्कृष्ट परम भावका अनुभव कराते है।—'रचना जिनउपदेशकी सर्वोत्कृष्ट तीनों काल।' कोई भी वीतराग शास्त्र आत्मामें सन्मुखता कराते है, भूतार्थस्वभावका अनुभव कराते है।

प्रत्येक वस्तु अस्ति-नास्ति, नित्य-अनित्य, एक-अनेक ऐसे अनंत स्वभावों सहित है, उसे अनेकान्त कहा जाता है। ऐसी वस्तुको सर्वथा क्षणिक मानना अथवा सर्वथा अपरिणामी मानना वह मिथ्या मत है। वस्तुके सर्वांगको अर्थात् कि उसके सर्व धर्मोंको न मानते एक ही अंगको एकान्त पकड़ने पर वस्तु सिद्ध होती नहीं है।–छह अंध मनुष्यों जैसे हाथीकी पूंछ, सूंढ, कान आदि एक-एक अंगको पकड़कर उसे ही हाथी मान बैठे, वैसे अज्ञानीओं एक साथ अनंत धर्मोवाली वस्तुको न जानते नित्य अथवा अनित्य ऐसे एक ही धर्मरूप मानते है लेकिन नित्यता बिना वस्तु टिकती नहीं है और अनित्यता बिना उसमें परिणमनरूप कार्य होता नहीं; इस प्रकार अनेकान्त द्वारा ही वस्तुकी सिद्धि है; अनेकान्तमें तो बहुत रहस्य है। वस्तुके अनेक धर्मोंको उसके साथ रखकर यथार्थ वस्तुस्वरूप प्रसिद्ध करते है–ऐसा स्वरूप प्रसिद्ध करे वे यथार्थ शास्त्र है।

जो शास्त्र विषय-कषायके पोषक हो, युद्ध-हिंसा आदिकी अनुमोदना करते हो, जीवको पराधीन कहते हो या रागसे और इन्द्रियज्ञानसे धर्म मानते हो, तो वे भी कुशास्त्र है, उसकी मान्यतासे कुज्ञानका पोषण होता है। स्व-विषयरूप संपूर्ण अतीन्द्रिय वीतरागस्वरूप आत्मा, उसका स्वरूप वह कुशास्त्र बता सकते नहीं, इसलिये ऐसे कुशास्त्र

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुषकी भक्ति जो गुणभेदसे
करता, वही व्यवहारसे निर्वाणभक्ति वेद रे ॥१३५॥

अप्रशस्त है–बुरे है, सत्य सिद्धांत विरुद्ध है, और जीवका अधिक अहित करनेवाले है, इसलिये उसका सेवन छोड़ना चाहिये।

अहो, सम्यग्ज्ञानकी महिमा जगतको मालूम नहीं है, और अधिकांश लोग अज्ञानपूर्वक धर्मके नाम पर रागको ही चारित्र समझकर मिथ्याचारित्रिका सेवन कर रहा है, लेकिन सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना यथार्थ चारित्र कदापि होता नहीं है। और सम्यग्ज्ञान आदिकी क्रियाएँ जीवको हितकर होती नहीं है। अभी तो यथार्थ शास्त्र क्या और विपरीत शास्त्र क्या– उसकी जिसे खबर नहीं, और सच्चे शास्त्रोंका भी अर्थ समझना जिन्हें आता नहीं, और स्वयंकी कल्पनासे विपरीत अर्थ करके अज्ञानका पोषण करते है, उसने भी गृहीत अज्ञानको छोड़ा नहीं है। भाई, अज्ञान महा दुःखकर है, ऐसा जानकर अब तो उसका सेवन छोड़। ऐसा अवसर बारम्बार नहीं आता।

अहो, यह तो सम्यग्ज्ञान सहित वीतरागताका मार्ग है...वह ही परमहितकर है। 'मंगलमय-मंगलकरण वीतराग विज्ञान' वीतरागविज्ञान बिना जीवका अन्य किसी भी प्रकारसे हित होता नहीं है; अरिहंत आदि इष्टपदकी प्राप्ति वीतरागविज्ञान द्वारा ही होती है। और ऐसे वीतरागविज्ञानका उपदेश सर्वज्ञदेवने कहा हुआ और ज्ञानी-संतों द्वारा रचित शास्त्रोंमें ही यथार्थ है। अज्ञानी-कुमतिओं द्वारा रचित कुशास्त्रोंमें वीतरागविज्ञानका उपदेश होता नहीं है। वह तो राग-द्वेष-अज्ञानके पोषक है।

गुण-गुणी (ज्ञान और आत्मा) सर्वथा पृथक् नहीं फिर भी उसे पृथक् माने, जैसे ज्ञान आत्मामेंसे उत्पन्न होने पर भी बाह्य पदार्थों द्वारा ज्ञानकी उत्पत्ति माने तो वह जीव गुण-गुणीको सर्वथा पृथक् मानता है, ऐसी विपरीत मान्यताके पोषक शास्त्र भी कुशास्त्र है। आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान बाह्यमेंसे आता नहीं है।

यह जगत किसीके द्वारा निर्मित नहीं है, जगतके जड-चेतन सभी पदार्थ अकृत्रिम स्वयंसिद्ध है; वैसे ही प्रत्येक वस्तुके गुण भी स्वयंसिद्ध है, कोई संयोगों द्वारा उस गुणकी उत्पत्ति हुई नहीं है। 'सभी अद्वैत-ब्रह्म है और दूसरा कोई सत् है ही नहीं, अथवा ईश्वर इस जगतके कर्ता-हर्ता है'–ऐसा भी नहीं है, फिर भी ऐसा मानना वह गृहीत मिथ्याज्ञान है, और ऐसा कहनेवाले शास्त्र वे शास्त्र कुशास्त्र और अज्ञानपोषक है।

रे ! जोड़ निजको मुक्तिपथमें भक्ति निर्वृतिकी करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे ॥१३६॥

सर्वज्ञ-अरिहंतदेव आहार लेते है, निर्ग्रंथ मुनि वस्त्र पहनते है, भगवानको रोग होता है और दवा लेते है—इस प्रकार देव-गुरु सम्बन्धी अत्यंत विपरीत प्ररूपणा जिसमें हो वह भी गृहीत मिथ्याज्ञानके ही पोषक कुशास्त्र है–ऐसा समझना; और स्वयंके हितके लिये उसका सेवन छोड़ना।

मात्र परजीवकी दयाका भाव अथवा आहारदानका भाव वह शुभराग है, तदपि उससे मोक्ष होता है ऐसा कहना विपरीत कथन है। वीतरागी जैनसिद्धांतमें रागको तो बंधका ही कारण कहा है, शुभराग भी मोक्षका कारण नहीं। मोक्षका कारण तो वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है। राग बिनाका अबंधस्वभावी भगवान आत्मा उसके आश्रयसे ही भवका अभाव होता है। रागके आश्रयसे कभी भी भवका अभाव नहीं होता है; सच्चे मुनिको आहारदान देनेके फलमें भोगभूमि कहा है लेकिन मोक्ष नहीं कहा है। श्रेयांसकुमार आदिको तो आहारदानके समय भी अंदर आत्माका सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान था, वह ही मोक्षका कारण हुए है, आहारदानका राग कोई मोक्षका कारण नहीं हुआ है। अहा, वीतरागशास्त्रोंने तो वीतरागमार्गको प्रकाशित किया ही है। उसमें उपचारकथन जहाँ आये वहाँ उसका आशय समझकर अर्थ करना चाहिये। व्यवहार पराश्रित है इसलिये त्याज्य है, निश्चय स्वाश्रित है इसलिये आदरणीय है। वीतरागी शास्त्रोंके कथनमें कहीं परस्पर विरोधाभास होता नहीं है। शास्त्र पढ़कर कोई किसी भी प्रकारसे रागका या पराश्रयका पोषक आशय निकाले तो वह शास्त्रोंके अर्थको समझा नहीं है। शास्त्र तो पराश्रय और रागको छुड़ानेवाले है, पोषण करनेवाले नहीं है।

कोई अज्ञानी, चाहे बाह्यसे कुशास्त्रको न माने लेकिन यथार्थ शास्त्रके बहाने भी कुशास्त्रों जैसी ही मिथ्या मान्यताका पोषण करे तो उसे भी गृहीत अज्ञान छूटा नहीं है। जैसे सत्तास्वरूपमें कहते हैं कि सर्वज्ञ अरिहंतदेव और अन्य कुदेव उनके बीचका अंतर समझे बिना, अरिहंतदेवको माने और अन्यको न माने तो भी उसे गृहीत मिथ्यात्व छूटा नहीं है; देवका यथार्थ स्वरूप समझे बिना गृहीत मिथ्यात्व छूटता नहीं; इसी प्रकार सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्रके बारेमें भी समझना। (क्रमशः)

रागादिके परिहारमें जो साधु जोड़े आतमा।
है योगकी भक्ति उसे; नहि अन्यको सम्भावना ॥१३७॥

जैनदर्शनके शास्त्रोंके भाव समझनेके लिये अवश्य लक्षमें रखनेयोग्य नियम

(1) जैनदर्शन अनेकांत स्वरूप है; वह प्रत्येक वस्तुको अनेकान्तस्वरूप बतलाती है। प्रत्येक तत्त्व स्वयंके स्वरूपमें अस्तिरूप और परके स्वरूपसे नास्तिरूप है। यह अनेकान्त एक ही वस्तुका स्वरूप समझनेका उपाय है। उससे ही जैनदर्शनकी महत्ता है।

(2) प्रत्येक तत्त्व स्वतंत्र है, स्वयं स्वयंसे अस्तिरूप है और परसे नास्तिरूप है। जिसमें जिसकी नास्ति हो उसमें वह कुछ कर सकता नहीं इसलिये कोई भी तत्त्व अन्य किसी तत्त्वका कुछ भी करनेमें कदापि समर्थ नहीं है।

(3) प्रत्येक द्रव्य एक दूसरेसे पृथक् होनेसे उसके गुण और पर्याय भी त्रिकाल पृथक्-पृथक् ही है और प्रत्येक द्रव्यके गुण-पर्याय स्वयं स्वयंके द्रव्यके आधारसे है, किसी भी द्रव्यके गुण-पर्याय कदापि कोई अन्य द्रव्यके आधारसे नहीं है।

(4) जीव स्वयं दूसरे अनंत पर-पदार्थोंसे भिन्न है इसलिये कोई परपदार्थ जीवको लाभ-नुकशान कर सकता नहीं है। जीवका पुरुषार्थ स्वतंत्र है। जगतके सर्व द्रव्य स्वसे अस्तिरूप और परसे नास्तिरूप—ऐसा अनेकान्तस्वरूप है, यह अनेकान्त द्वारा वस्तुस्वरूपकी स्वतंत्रता और पूर्णता है। ऐसा भेदज्ञान कराके जैनदर्शन आत्मस्वभावके साथ एकता कराता है और परके साथका सम्बन्धका विच्छेद कराती है।

(5) जैनदर्शनके शास्त्रका कोई भी कथन हो उसका मूल प्रयोजन वीतरागभाव ही है। इस प्रयोजनको अखंड रखकर ही जैनशास्त्रोंके अर्थ समझना।

उपरोक्त पांच नियमोंको यथार्थ लक्षमें रखकर सत्शास्त्रोंका अर्थ समझनेमें आये तभी उसका यथार्थ रहस्य समझमें आता है। कोई भी शास्त्र हो और उसमें निश्चयनयका कथन हो या व्यवहारनयका कथन हो लेकिन उसका यथार्थ भाव समझने हेतु उपरोक्त नियमोंको लक्षमें रखकर उसका अर्थ करना चाहिये।

अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्तका मर्म समझकर उसका अर्थ करे तो शास्त्ररूपी समुद्रका पार हो जाय–शास्त्रके किसी भी कथनमें भ्रम न हो और यदि

(शेष देखे पृष्ठ ९ पर)

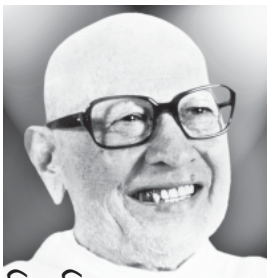

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–सम्यग्दर्शन होनेसे पहले किस प्रकारके विचार होते है कि जिनका अभाव करके सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर :–किस प्रकारके विचार चलते हैं, इसका कोई नियम नहीं है। तत्त्वके किसी भी प्रकारके विचार हो सकते हैं, जिनका अभाव करके सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है।

प्रश्न :–परिचय किसका करना चाहिए?

उत्तर :–सत्स्वरूप ऐसे आत्माका परिचय करना चाहिए। जितना जिसका परिचय होगा, उतनी ही उसकी परिणति होगी। रागके रसीले जगतके जीवोंका परिचय करेगा तो तेरी परिणति पतित हो जायेगी। जिनको शरीरादिका प्रेम है, पुण्यका प्रेम है, ऐसे लौकिकजनोंका परिचय करेगा तो तेरी परिणति बिगड़ जायेगी। लोग मान-सन्मान तुझे समर्पित करेंगे तो उनके परिचयमें तू मर जायेगा। स्त्री-पुत्रादि अथवा व्यापारादिके परिचयसे तुझे विशेष हानि होगी। तू तो आनन्दका नाथ प्रभु है। तेरे परिचयमें यदि तू रहेगा तो तुझे आनन्द और सुख प्राप्त होगा। जैसे जंगलमें सिंह निर्भय होकर विचरता है, उसे हिरण आदिका भय नहीं होता; वैसे ही तू भी निर्भय होकर अपने स्वदेशमें विचरण कर।

प्रश्न :–आत्मानुभव होनेसे पहले अंतिम विकल्प क्या होता है?

उत्तर :–अंतिम विकल्पका कोई नियम नहीं है। रागसे भिन्नतापूर्वक शुद्धात्माकी सन्मुखताका प्रयत्न करते-करते चैतन्यकी प्राप्ति होती है। जहाँ त्रिकाली ज्ञायक-प्रभुकी तरफ परिणति ढल रही हो, ज्ञायक धाराकी उग्रता और तीक्ष्णता हो, वहाँ अंतिम विकल्प कौनसा होगा– इसका कोई नियम नहीं है। पर्यायको अंदर गराईमें ध्रुव पातालमें ले जाय, वहाँ भगवान आत्माकी प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न :–स्वानुभूति कैसे करना?

उत्तर :–रागकी वृत्ति परकी तरफ जाती है, उसका लक्ष छोड़कर स्वसन्मुख झुके तो अनुभूति हो।

सब ही विकल्प अभावमें जो साधु जोड़े आतमा।
है योगकी भक्ति उसे; नहिं अन्यको सम्भावना ॥१३८॥

प्रश्न :–विषय-कषायकी सतत् विडम्बनासे छूटनेका साधन क्या ?

उत्तर :–विषय-कषायका प्रेम छोड़ना, रुचि छोड़ना, विषय-कषायके रागसे चैतन्यका भेदज्ञान करना, वह विषय-कषायकी सतत् विडम्बनासे छूटनेका साधन है।

प्रश्न :–इस तत्त्वके संस्कार अगले भवमें भी बने रहें–ऐसा कोई उपाय है क्या ?

उत्तर :–हाँ, तत्त्वका पक्का निर्णय करे तो अगले भवमें वह संस्कार काम आ सकता है।

प्रश्न :–विकल्पोंसे निर्विकल्प दशाकी प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर :–विकल्पसे निर्विकल्प चैतन्यके अनुभवकी तरफ जायेंगे–ऐसा जो मानता है, वह विकल्पको और निर्विकल्प तत्त्वको–दोनोंको एक मानता है, अतः उसे विकल्पका ही अनुभव रहेगा; किन्तु विकल्पसे छूटकर निर्विकल्प चैतन्यका अनुभव नहीं होगा। जो विकल्पको साधनके रूपमें स्वीकार करता है, वह विकल्पका अवलम्बन छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकता अर्थात् विकल्पसे पार ऐसा चैतन्यतत्त्व उसके अनुभवमें नहीं आ सकता। भाई ! चैतन्यतत्त्व और विकल्प—इन दोनोंकी तो जाति ही जुदी है। चैतन्यमेंसे विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती और विकल्पका प्रवेश चैतन्यमें नहीं होता। इस प्रकार दोनोंकी अत्यन्त भिन्नताको अंतरंगसे विचार कर चैतन्यकी ही भावनामें तत्पर रहो। चैतन्यमें जैसे-जैसे निकटता होती जाती है वैसे-वैसे विकल्पोंका शमन होता जाता है, पश्चात् चैतन्यमें लीन होने पर विकल्पोंका सर्वथा लोप हो जाता है। इस भांति चैतन्यमें विकल्प नहीं है–ऐसे भिन्न चैतन्यका तुम तीव्र लगनसे चिंतवन करो।

प्रश्न :–अनुभूति और ज्ञानमें क्या अंतर है ?

उत्तर :–ज्ञानमें तो संपूर्ण आत्मा जाना जाता है और अनुभूतिमें तो पर्यायका ही वेदन होता है, द्रव्यका वेदन नहीं होता।

प्रश्न :–पर्यायके भेद जाननेमें तो आते हैं न ?

उत्तर :–पर्यायका यथायोग्य ज्ञान करना तो ठीक है, परंतु जो शुद्ध अखंड अभेद आत्माको पर्यायके भेदरूप मानता है, उसे कुबुद्धि कहा है। (नियमसार कलश-२६१)

विपरीत आग्रह छोड़कर, श्री जिन कथित जो तत्त्व हैं।
जोड़े वहाँ निज आतमा, निजभाव उसका योग है ॥१३९॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *पूर्वभूमिकामें हमें करना कैसे?*

समाधान :—भेदज्ञान प्रयास करनेसे होता है, प्रयास बगैर नहीं होता। मात्र मंथन करते–करते भेदज्ञान हो जाय ऐसा नहीं बनता; किन्तु परिणतिको जुदी करते–करते हो जाता है। किन्तु वैसा ध्येय होना चाहिये। परिणतिको जुदी करने—स्वभावको जुदा पाड़नेका ध्येय होना चाहिये। और वह प्रयास करते–करते होता ही है। क्यों ? स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं। विश्वास एवं प्रतीतिको छोड़ना नहीं; श्रद्धा तो बराबर करनी। प्रयास कम–अधिक हो परन्तु श्रद्धा तो बराबर करनी कि इस मार्ग और इसी रीतिसे प्रयास करनेसे (कार्य) होता ही है। जैसे कि 'यहाँ गाँव (जाना) है' ऐसा निश्चय होनेके बाद धीरे चला जाये तो भी चल तो रहा है। उसी प्रकार (यहाँ) निश्चय–दृढ़ता करे तो कार्य हुए बिना नहीं रहता। श्रद्धामें हारना नहीं, श्रद्धा बराबर करना। जैसी देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धा दृढ़ रखता है वैसे ही इसी मार्गसे ही आत्मा प्राप्त हो सकेगा ऐसी श्रद्धा बराबर रखना।

अपने पुरुषार्थकी मन्दता है, कारण पूरा नहीं देता, वहाँ दृष्टिको स्थिर नहीं करता। दृष्टि कुछ देरके लिये स्थिर हुई न हुई इतनेमें हट जाती है, इसलिये भेदज्ञान नहीं होता। रस बाहर दौड़ जाता है इसलिये परिणति भी अपनेको छोड़कर बाहर चली जाती है। दृष्टिको पूरा तद्रूप–तन्मय नहीं करता इसलिये कार्य नहीं होता; इसप्रकार अपना ही कारण (दोष) है।

प्रश्न :— *आजकल ध्यान पद्धति चल रही है कि श्वासोच्छ्वास रोको, मनको खाली करो तो तुम्हें भीतरसे आत्म-विचारोंका स्फुरण होगा। तो क्या ऐसा ध्यान कुछ सहायक हो सकता है?*

समाधान :—वह शुभभावनारूप है। उसमें (मनकी) एकाग्रता हो, परन्तु सच्चा ध्यान तो अपनेमें सच्चा ज्ञान हो, तत्त्वको मूलमेंसे—स्वभावमेंसे—पहिचाने तब होता है। सच्चा ज्ञान हो तब सच्चा ध्यान होता है, इसलिये तत्त्वको ग्रहण करना। स्वयं अपने ज्ञान द्वारा सूक्ष्म उपयोग करके अपनेको ग्रहण करे तो उसमें सच्ची एकाग्रता होती है। वैसे

वृषभादि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योगकी।
निर्वृति सुख पाया; अतः कर भक्ति उत्तम योगकी ॥१४०॥

श्वासोच्छ्वास तो उसने कई बार रोका है और उसमें एकाग्रता भी की है, परन्तु जब तक आत्माके अस्तित्वका ग्रहण नहीं हुआ तब तक मात्र मनकी एकाग्रता होती है। मूल आत्माका अस्तित्व ग्रहण किये बिना केवल मनकी एकाग्रता कुछ काम नहीं आती।

प्रश्न :— *सूक्ष्म उपयोगकी भूमिकामें पहुँचनेके लिये क्या करना चाहिये?*

समाधान :—तत्त्वके गहराईसे विचार करना, ज्ञायककी लगन लगानी, उसकी महिमा करनी। जो उपयोग बाह्यमें जाता है वह सब स्थूल है। उसकी महिमा एवं एकत्वबुद्धि तोड़कर मैं चैतन्य हूँ, मैं महिमाका भंडार हूँ, सर्वस्व मुझमें है, बाहर कुछ नहीं है, ऐसे समस्त विकल्पोंके बीच 'मैं कौन हूँ?'—उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना। तदर्थ स्वयं सूक्ष्म उपयोग करे तो उसे पहिचान सकता है। बाहर जानेवाला स्थूल उपयोग हो तो पहिचान नहीं सकता। इसलिये तत्त्वके विचार करना। महापुरुषोंने जो मार्ग बतलाया है उसका पठन–विचार करना और स्वयं अंतरमें आत्माको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना।

प्रश्न :— *विशेष एकान्तवाससे स्वाध्याय हो सकता है? ऐसे स्थानोंकी क्या आवश्यकता है?*

समाधान :—जिसे जिसकी रुचि हो वह बीचमें आता ही है। कोई एकान्तमें रहे, कोई एकाग्रता करे, परन्तु मुख्य तो अपने आत्माको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। शास्त्रमें आता है और आचार्य भी यही कहते हैं कि तू अपने आत्माको पहिचान तथा उसकी प्रतीति कर। ''रे जानकर बंधन स्वभाव, स्वभाव जान तू आत्मका।'' यह बंध क्या है? और आत्मा क्या है? वह जानकर ''जो बंधमें हि विरक्त होवें.....'' बंध तथा बंधके जो भाव, उनसे जो विरक्त हो वह अपने स्वभावको पहिचाने। जिस प्रज्ञासे स्वभावको पृथक् किया उससे स्वभावको ग्रहण करके उसमें एकाग्रता करे वह मुक्तिका मार्ग है—स्वानुभूतिका मार्ग है। स्वयं सच्चे ज्ञानके बिना सब बाह्य साधन एकत्रित करे फिर भी वह पैर कहाँ रखेगा? कहाँ खड़ा रहेगा? जो अपने स्वभावको नहीं पहिचानता वह एकाग्रता कहाँ करेगा? एकान्तमें कहाँ जायगा? स्वयं अपनेको पहिचानना चाहिये कि मैं यह चैतन्य हूँ। उसके बिना वह कहाँ पैर रखेगा? इसलिये उसे ज्ञानद्वारा–प्रज्ञाद्वारा अपनेको पहिचानना चाहिये कि मैं तो यह चैतन्य हूँ। इसप्रकार स्वयं अपनेको ग्रहण करके उसमें एकाग्रता करे तो सच्ची एकाग्रता हो; नहीं तो वह मात्र शुभभावनारूप होती है।

नहिं अन्यवश जो जीव, आवश्यक करम होता उसे।
यह कर्मनाशक योग ही निर्वाणमार्ग प्रसिद्ध रे॥१४१॥

बाल विभाग

दृढ़ श्रद्धानी श्री वारिषेण

राजगृही नगरीके उद्यानमें श्रीकीर्ति श्रे‍ीके गलेमें हीरोंका हार देखकर मगधसुंदरी मुग्ध हो गई और अपने प्रेमी विद्युतचोरको उस हार लानेको कहा। विद्युतचोर एक रात्रिको श्रे‍ीके घरसे उस हारको चुराकर भाग रहा था लेकिन हारके प्रकाशके कारण सिपाही उसके पीछे पकड़नेके लिये दौड़े और विद्युतचोरने स्मशानमें ध्यान कर रहे वारि‍ेणके पैरके पास हार डालकर छिप गया। सिपाहीने वारि‍ेणको चोर समझकर राजाके सामने प्रस्तुत किया, राजाने उसे मृत्युदंड सुनाया लेकिन वारि‍ेणके पुण्यके प्रभावसे जल्लादकी खड्गका वार फूलकी माला बन गया। यह सब प्रसंग देखकर वारि‍ेणको वैराग्य आता है। राजा वारि‍ेणके आगे क्षमा मागता है दूसरी ओर यह समग्र घटना देखर विद्युतचोर राजाके पास क्षमा मागता है और राजा उसे अभयदान देकर मुक्त करते है। अब आगे....

वारिषेणको निरपराध देखकर श्रेणिक बोले–

''पुत्र ! अब शीघ्र राजमहल चलो, तुम्हारी माता तुम्हारे दर्शनकी प्रतीक्षा कर रही है; उन्हें दर्शन देकर उनके नेत्रोंको तृप्त करो।''

लेकिन वारिषेण तो उक्त घटनाको देखकर संसारसे विरक्त हो चुके थे। वे पिताको सम्बोधित करते हुए बोले–

''हे तात् ! मुझे क्षमा करो, मैंने संसारकी विचित्र-लीला बहुत देख ली, अब तो मेरा हृदय संसार-दुःखसे थक गया है। अब मैं एक क्षण भी इस मोहके 'कारागृह'में नहीं रहना चाहता। आयु अल्प और जीवन क्षणभंगुर है। अब तो मेरे धर्म साधनेका अवसर आया है।

यह मनुष्यपना तो धुन लगे काले गन्नेके समान निष्फल है। यह आपदारूपी गाँठोंसे तन्मय है और अन्त में नीरस है। इसका मूल चूसने योग्य नहीं है और मध्य क्षुधा, रोग, कोढादि भयानक छिद्रोंसे सहित है; इसलिये मध्य भोगने योग्य नहीं। यह नाममात्रके लिये ही रमणीक है–ऐसी निस्सार मनुष्यपर्यायको धर्मका बीज बनाकर सफल करना ही योग्य है।

हे तात् ! यह स्नेहीजनोंका संयोग तो पर्वत शिखर पर वायुके थपेडे खाते हुए दीपकके समान चंचल है। जिस प्रकार भवनमें आग लगने पर उसे छोड़ देना ही हितकर

जो वश नहीं वह 'अवश', आवश्यक अवशका कर्म है।
वह युक्ति या उपाय है, निरवयव कर्ता धर्म है॥१४२॥

है। उसी प्रकार मेरा आत्मा भी इस मोहकी ज्वालासे भभकते संसारकी दावाग्निसे बाहर निकलना चाहता है, अतः आप मुझे पुनः उस ज्वालामें न धकेले।

जैसे लहराते हुए भयंकर समुद्रको तैरकर कोई मुश्किलसे किनारे आ जाये और कोई उसे धक्का देकर पुनः समुद्रमें धकेल दे; उसी तरह इस घोर संसार-सागरसे वैराग्य द्वारा तैरकर मेरा आत्मा मुश्किलसे किनारे पर आया है, आप पुनः इसे संसार-सागरमें न धकेले। मेरे परम अमृतके भोगमें विष घोलनेका कार्य न करें। अतः मुझे क्षमा करें।

अहो ! इस पुरुषके शरीरके जनक आत्मा ! अहो ! इस पुरुषके शरीरकी जननी के आत्मा। इस पुरुषका आत्मा तुम्हारे द्वारा जनित नहीं है–ऐसा तुम निश्चय करो। इसलिये तुम इस आत्माको छोड़ो। जिसे ज्ञान-ज्योति प्रकट हुई है–ऐसा यह आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादिजनकके पास जा रहा है; इसलिये प्रसन्न-चित्तसे मुझे विदा करो।

हे माता ! एक बार रोना हो तो रो ले, मगर अब मैं वचन देता हूँ कि किसी दूसरी माताको नहीं रुलाऊंगा। मेरे रोम-रोम में वैराग्य छा रहा है। मैं परमानंदकी प्राप्तिके लिये वनमें जाना चाहता हूँ, इसलिये हे जनेता ! मुझे आनन्दसे विदा करो।''

अहो, धन्य आत्मा ! धन्य काल ! माताकी आंखोंमें आँसुकी धार चली आ रही है, वह अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे पुत्रको विदा करती है–''बेटा ! तेरे सुखके पंथमें हम विघ्न नहीं करते, हमारा धन्य भाग्य ! कि आज हमारा पुत्र केवलज्ञान लक्ष्मीका वरण करनेके लिये जा रहा है। जा...बेटा ! जा...! अपने साध्यकी सिद्धि कर–यह हमारा आशीर्वाद है, हमारी अनुमोदना है। हमें भी अल्पकालमें इसी पंथ पर आना है।''

''अहो ! कैसा अद्‌भुत होगा यह वैराग्य प्रसंग !!''

वारिषेण वैराग्यसे ओतप्रोत होकर माता-पितासे जिनेश्वरी दीक्षा की आज्ञा लेकर वनकी ओर चल दिये और दीक्षा धारण कर अडोल अकम्प साधनापूर्वक विचरण करने लगे।

अहो ! उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों सिद्ध भगवान ही साक्षात् विचरण करते हों... वाह रे वाह !...धन्य मुनिदशा !!

वर्ते अशुभ परिणाममें, वह श्रमण है वश अन्यके।
अतएव आवश्यकस्वरूप न कर्म होता है उसे ॥१४३॥

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्धी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ५-४५ से ६-०५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१५वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-१५ से ४-१५ : श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-१५ से ४-४५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री अष्टपाहुड़ पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **कार्तिकी-नन्दीश्वर-अष्टाह्निका** ❀ आषाढ़ शुक्ल ८, रविवार, ता. १४-०७-२०२४, से आषाढ़ शुक्ल १५, रविवार, ता. २१-०७-२०२४—तक 'पंचमेरु-नन्दीश्वर पूजनविधान' एवं अध्यात्मतत्त्व ज्ञानोपासनापूर्वक आनन्दोल्लास सह मनाया जाएगा।

वीरशासन जयंती : अषाढ कृष्ण-१, सोमवार ता. २२-०७-२०२४ के दिन श्री वीरशासन-जयंती विशेष पूजा तथा भक्ति सह मनाया जायेगा।

बालकोंके लिये दिये गये जुलाई-२०२४ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) ज्ञान	(७) अतीन्द्रिय	(१४) अरिहंत, सिद्ध
(२) आत्म स्वरूप	(८) अतीन्द्रिय ज्ञान	(१५) शुद्धोपयोग
(३) वीतराग-विज्ञान	(९) आत्मा	(१६) सर्वज्ञस्वभावी
(४) महिमा–अतीन्द्रिय	(१०) परोक्ष–प्रत्यक्ष	(१७) ज्ञान–राग
(५) स्वानुभूति	(११) अतीन्द्रिय	(१८) सम्यक्ज्ञान–सर्वज्ञ
(६) प्रत्यक्ष	(१२) सिंह, हाथी	(१९) सम्यक्दर्शन
	(१३) सम्यक्	(२०) स्वहित

(पृष्ठ १९ का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

प्रत्युत शुभ करते करते उसे लाभकारक माननेसे मिथ्यात्वकी पुष्टि होती है। शुभभाव राग है, राग करते-करते अरागी स्वभावकी दृष्टि तीन कालमें प्रकट नहीं होती। पुण्य करते करते न तो धर्म होता है और न सम्यक्त्व ही प्रकट होता है। लोगोंको इस बातको हृदयमें उतारना मुश्किल लगता है किन्तु जिन्हें जन्म-मरणका अन्त करना है उन्हें इस बातको हृदयमें उतारे बिना दूसरा कोई मार्ग नहीं है। (क्रमशः) ✻

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न-५२ : 'काला रंग' वह अनुजीवी गुण है या प्रतिजीवी गुण ?

उत्तर : 'काला रंग' वह गुण नहीं लेकिन गुणकी पर्याय है। पुद्गल द्रव्यके रंग नामके गुणकी काली अवस्था है उसे काला रंग कहा जाता है। रंग वह पुद्गलका अनुजीवी गुण है।

प्रश्न-५३ : द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किस प्रकारसे है ?

उत्तर : द्रव्यमें नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्थाका नाश होता है और वस्तुरूपसे वह कायम रहनेवाला है—इस प्रकार द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है। जैसे कि जीवद्रव्यमें सिद्धदशाका उत्पन्न होना, संसारदशाका नाश होना और जीवरूपसे उसका कायम रहना—यह जीव द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

प्रश्न-५४ : 'एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नहीं कर सकता'—यह बात सत्य है ? कैसे ?

उत्तर : हा, एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नहीं कर सकता है यह बात सत्य है, क्योंकि प्रत्येक वस्तुमें अगुरुलघुत्व नामकी शक्ति विद्यमान है, इससे कोई एक पदार्थ अन्य पदार्थरूप परिणमता नहीं, और उसका कुछ करता नहीं। और वस्तुमें अस्ति-नास्ति धर्म है, प्रत्येक वस्तु स्वयं अपने स्वरूप है और परके स्वरूपसे नहीं है। अर्थात् प्रत्येक वस्तु पृथक्-पृथक् स्वतंत्र है। इसलिये कोई वस्तु एक दूसरेका कोई भी कार्य कर सकती नहीं है। प्रत्येक वस्तुमें अपना कार्य करनेकी शक्ति है। द्रव्यत्व नामकी शक्ति प्रत्येक पदार्थमें है, उस शक्तिसे प्रत्येक वस्तुका कार्य स्वयं अपनी योग्यतासे हुआ करता है। एक वस्तु दूसरी वस्तुका कार्य करती नहीं है।

प्रश्न-५५ : 'सभी जीवोंको दर्शनपूर्वक ही ज्ञान' (अर्थात् प्रथम दर्शन और बादमें ज्ञान) होता है' यह बात बराबर है ?

उत्तर : नहीं, सभी जीवोंके लिये ऐसा नहीं। अपूर्ण ज्ञानवाले जीवको दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होता है, लेकिन जिसे पूर्णज्ञान (केवलज्ञान) प्रकट हो गया हो उसे तो दर्शन और ज्ञान दोनों एक साथ ही होते है।

प्रश्न-५६ : 'मुनिराज ध्यानमें मग्न है' इस प्रसंगका छहों द्रव्यकी क्रियामें अल्प वर्णन किजीये।

उत्तर : (१) ध्यानस्थ मुनिराजका आत्मा उस समय परम आनंदमें लीन है अर्थात् उनको शुद्ध ज्ञानक्रिया वर्तती है, उन्हें मोक्षमार्गकी क्रिया वर्तती है—जीवद्रव्यकी क्रिया। (२) जड शरीरके परमाणुओंकी क्रिया उस समय स्थिर रहने लायक है, वह पुद्गलकी क्रिया। (३) अधर्मास्तिकाय द्रव्य उस जीव और परमाणुओंको स्थिर रहनेमें निमित्तरूप है। (४) कालद्रव्य परिणमनमें निमित्त है। (५) आकाश द्रव्य उन्हें जगह देनेमें निमित्त है और (६) धर्मास्तिकाय द्रव्य वहाँ पर हाजर है लेकिन जीवमें गतिक्रिया न होनेसे उस समय धर्मास्तिकाय निमित्त नहीं है।

(१३१)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर छहढालाकी चौथी ढालमेंसे मिलेंगे।)

(१) ..... के अतिरिक्त दूसरा कोई जगतमें सुखका कारण नहीं है।

(२) ..... में बुद्धि लगानेसे हित होता है।

(३) ..... से सुख मिलता है और दुःखका नाश होता है।

(४) केवलज्ञान अचिंत्य ..... से भरपूर और महान ..... सुख सहित है।

(५) मति, श्रुतज्ञान ..... समय प्रत्यक्ष है।

(६) सम्यक्दर्शन प्रगट हो तब मति-श्रुतज्ञान ..... है।

(७) आत्मा ..... होनेसे उसे जाननेमें इन्द्रियका निमित्त नहीं है।

(८) ..... से मोक्षमार्गका प्रारंभ होता है।

(९) यह अंधकार है ऐसा जो जाने वह ..... है।

(१०) आंखसे जो दिखाई दे वह ..... ज्ञान है और आंख बिना दिखाई दे वह ..... ज्ञान है।

(११) आत्माका अनुभव होते ..... आनंदरसकी धारा उल्लसित होती है।

(१२) महावीरके आत्माने ..... के भवमें और पारसनाथके जीवने ..... भवमें आत्माका अनुभव किया था।

(१३) सभी साधक जीवोंको ..... मति-श्रुतज्ञान नियमसे होता है।

(१४) ..... और ..... भगवंतोंको केवलज्ञान होता हैं।

(१५) ..... द्वारा अंतरात्मा और परमात्मपद प्राप्त होता है।

(१६) नमो अरिहंताणंमें ..... आत्माकी प्रतीत आना चाहिये।

(१७) ..... और ..... का भिन्न अनुभव करना वह केवलज्ञानका कारण है।

(१८) स्वयंमें भेदज्ञान होकर ..... हुआ तब ..... की सत्य प्रतीति हुई।

(१९) सुखके लिये दूसरा कुछ मत ढूंढ, ... प्रगट कर।

(२०) ..... साधनेके लिये मुमुक्षुका जीवन है।

श्री अखिल गुजरात भगवती महिला मंडलकी ओरसे

अध्यात्म-अतिशयतीर्थ सोनगढ़में सानन्दोल्लास सम्पन्न होनेवाला

प्रशममूर्ति भगवती धन्यावतार

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनका

१११ वाँ जन्म-महोत्सव

स्वानुभवमुद्रित-अध्यात्ममार्गप्रकाशक परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके परम भक्त स्वानुभूतिविभूषित भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन– जिनकी वीतराग देव-शास्त्र-गुरुमहिमाभीनी एवं स्वानुभूतिमार्गप्रकाशिनी उपकार-किरणें हमारे साधनापथको सदैव आलोकित करती हैं। उनके प्रति उपकृततताभीगी भावनाको विशेष दृढ़ करनेके लिये, उनकी—१११वीं वार्षिक जन्मजयन्ती (भादों वदि दोज) सुवर्णपुरीमें श्री अखिल गुजरात भगवती महिला मंडलकी ओरसे अत्यन्त भक्तिभाव सह मनाई जायेगी। यह वार्षिक मंगल जन्मोत्सव श्रावण शुक्ल १३, ता. १७-८-२०२४, शनिवारसे भाद्रपद कृष्ण-२ ता. २१-८-२०२४, बुधवार—पाँच दिन तक 'श्री समवसरण विधान पूजा', अध्यात्म-ज्ञानोपासना और देव-गुरुभक्ति आदि विविध रोचक कार्यक्रम सह अतीव भक्त्युल्लाससे मनाया जायेगा। इस मंगल अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्रीके अध्यात्मरसपूर्ण टेपप्रवचन, पूज्य बहिनश्रीकी अनुभवरसभीनी विडियो-धर्मचर्चा, सांस्कृतिक-कार्यक्रम, विविध भजनमंडली द्वारा जिनेन्द्र एवं प्रासंगिक भक्ति—इत्यादि अनेकविध कार्यक्रमका भी सबको लाभ मिलेगा। समागत मेहमानोंके लिये आवास-भोजनव्यवस्था निःशुल्क रखी गई है।

निमंत्रक

श्री अखिल गुजरात भगवती महिला मंडलके

जय जिनेन्द्र

नोंध : निमंत्रण-पत्रिकाकी लेखन एवं प्रेषण विधि सोनगढ़में ता. २१-७-२०२४, रविवारके दिन रखी गई है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

● जगतमें समस्त जीवोंको ज्ञान स्व-अनुभवसे सिद्ध है। जब स्वाश्रयी ज्ञानद्वारा-अंतर्मुख-ज्ञानद्वारा, आत्माको जाने तभी आत्मा यथार्थरूपसे जाना कहलाए। परलक्ष्यी-ज्ञान तथा ११ अंगके शास्त्रज्ञानको आत्माका ज्ञान नहीं बतलाया है। जिसका लक्षण (स्वरूप) निर्णित करना है उस लक्ष्यरूप आत्माके अवलम्बनपूर्वक ही जाने; वही ज्ञान है। निमित्त, राग, व्यवहारके अवलम्बन द्वारा जाने वह ज्ञान नहीं है। आचार्यदेवको परवस्तुका ज्ञान प्रसिद्ध नहीं करना है। स्वलक्षणरूप-ज्ञान द्वारा आत्माको जाने तभी उसकी प्रसिद्धि सम्यक् है। देखो, इस प्रकार भी अंतर्मुखदृष्टि कराने की ही बात है।६४०।

● जिस द्वारा जानें उसे ही लक्षण कहते हैं। ज्ञान द्वारा आत्मा जाननेमें आता है, अतः ज्ञानसे ही आत्माका निर्णय होता है। ज्ञान द्वारा पुण्य-पापादि अथवा शरीरादिका निर्णय करना योग्य नहीं है। ज्ञान द्वारा तो आत्माका ही निर्णय करना योग्य है। ज्ञान कोई पुण्य-पाप अथवा देव-गुरु-शास्त्रका लक्षण नहीं है, वह तो लक्ष्यरूप आत्माका लक्षण है; 'जहाँ ज्ञान है वही उसके साथ अनन्त गुण हैं''। ज्ञान जिसका लक्षण है उसका निर्णय होने पर अनन्त गुणमय-आत्मा निर्णित हो जाता है - यही साध्य है।६४१।

● आत्मामें जहाँ एक गुण है वहीं अनन्तगुण साथ ही व्याप्त हैं, उसमें विभुत्वशक्ति कारण है। अनन्तगुणोंमें लक्षणभेद होने पर भी प्रदेशभेद नहीं है। अनन्त-भावों में एक भावरूप - अनन्तगुणोंका पिण्ड सो ही आत्मा है।६४२।

● एक ज्ञानको खयालमें लेते ही, उसके साथके अनन्तगुण एक साथ खयालमें आ जाते हैं –ऐसा एकरूप आत्मा खयालमें आने पर सम्यग्दर्शन होता है; उसके साथ अनन्तगुण आंशिकरूपसे खिले बिना नहीं रहते।६४३।

● अकर्तृत्व जिसका स्वभाव है, वह यदि विकारका कर्ता हो तो साधकता ही नहीं हो सकती। निमित्त होकर यह काम करूँ - ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसे स्वभावका अकर्तृत्व छोड़कर बाह्यमें जाना रुचिकर लगता है। स्वभावमें ढलता हुआ आत्मा अकर्तृत्व स्वभावी होता है, वह शक्ति आत्मामें अनादि अनन्त है।६४४।

● आत्माकी अरुचिवाले बहुत लोग ऐसा कहते हैं कि ऐसे भंगजालमें पड़ना छोड़ो; स्वयं तो आत्माका कल्याण करो, यह एक ही बात दृष्टिमें रखो - तो कहते हैं कि ऐसे जीवोंमें तो व्यवहार-पात्रताका भी अभाव है।६४५।

आत्मधर्म
जुलाई-२०२४
अंक-११ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-07-2024
Posted on 5-07-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org